(गोविन्द माधव)

सत्त्व, रज, तम गुण और उनका प्रभाव

(पुस्तक संख्या–36)

विनयावनत–

ब्रह्मशंकर शास्त्री

–प्रकाशक की ओर से–

यह समस्त सृष्टि त्रिगुणात्मक है अर्थात् त्रिगुणमयी है। हम सब मनुष्य भी त्रिगुणों के प्रभाव से ही अपनी समस्त क्रियाओं, चेष्टाओं का सम्पादन करते रहते हैं। विशेष तथ्य यह है कि हम सभी त्रिगुणों से पूर्ण प्रभावित हैं परन्तु उनके प्रभाव को एक सामान्य मनुष्य समझ नहीं पाता है। त्रिगुणों का इतना विशिष्ट प्रभाव है कि मनुष्य योनि के अतिरिक्त देवगण भी त्रिगुणों के प्रभाव से प्रभावित रहकर नाना प्रकार की चेष्टाएं करते रहते हैं मनुष्य का तो प्रत्येक कार्य प्रत्येक क्षण त्रिगुणों से प्रभावित रहता है। हमारा व्यवहार, आचरण, बोलचाल, सांसारिक क्रियाकलाप, कार्यविधि आदि आदि सभी कुछ त्रिगुणों से प्रभावित हैं। हम पूजा उपासना करते हैं अथवा सांसारिक वस्तुओं के संग्रह की चेष्टा करते हैं या हिंसा, दुराचार, दुष्कर्म करते हैं। इन सबमें भी त्रिगुणों का ही प्रभाव रहता है। हम सब त्रिगुणों से प्रभावित रहकर भी उसके प्रभाव को नहीं जान सकते हैं। मनुष्य साधारणतः यह समझता है कि जो भी कार्य कर रहे हैं वह स्वयं ही कर रहे हैं। इसी कारण उसमें कर्तापन का भाव आ जाता है। त्रिगुण कैसे कार्य करते हैं ? मनुष्य को कैसे प्रभावित करते हैं जिससे मनुष्य त्रिगुणों के अधीन रहकर अनेक प्रकार की चेष्टाऐं करता है। त्रिगुणों को जानकर हम उनके प्रभाव से मुक्त होकर त्रिगुणों से किस प्रकार अतीत हो सकते हैं। इस समस्त विषय पर शास्त्री जी द्वारा विस्तार से प्रकाश डाला गया है और क्रमिक विवेचना प्रस्तुत की गई जो शास्त्रसम्मत है। यह विवेचना बिना अनुभव के संभव नहीं है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। साधकों के लिए त्रिगुणों के विषय में तथा उनकी क्रियाविधि के बारे में जानना परम आवश्यक है। सामान्य लोगों के लिए भी उपयोगी है। इस पुस्तक की सरल विवेचना से सभी स्तर के लोग लाभान्वित होंगे,ऐसा इस पुस्तक का उद्देश्य है।

- प्रकाशक

—: विनम्र अनुरोध :—

परमात्मा की रचनात्मक शक्ति प्रकृति ने सत्त्व, रज, तम, नामक तीन गुण उत्पन्न किये हैं। इसी कारण इन त्रिगुणों को प्रकृतिजन्य कहा जाता है। इन्हीं त्रिगुणों के अधीन रहकर मानव शरीर के विभिन्न क्रियाकलाप सम्पादित होते हैं। इस कारण मानव शरीर पर त्रिगुणों का पूर्ण प्रभाव रहता है। यह समस्त जगत त्रिगुणात्मक सदृश्य हो गया है। जगत में निष्ठा, श्रद्धा, द्रव्य, स्थान, परिणाम, भोजन, यज्ञ, दान, तप रूपी कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति आदि सभी कुछ त्रिगुणात्मक है। इस तथ्य से त्रिगुणों की महत्ता को आप समझ गए होंगे। प्रकृति ने अपने त्रिगुणों को सर्वत्र फैलाकर यह समग्र सृष्टि ही त्रिगुणात्मक कर दी है। शरीर पर त्रिगुणों का स्पष्ट प्रभाव आप देख सकते हैं तथा उसकी क्रिया विधि को भी समझ सकते हैं। सत्त्व, रज, तम त्रिगुणों ने इस समग्र जगत में अपना व्यापक प्रभाव फैला रखा है जिससे प्रत्येक मनुष्य मोहित है, क्योंकि वह त्रिगुण से आच्छादित है। हम सब भी उसके आकर्षण में फंसे हैं। एक साधक को त्रिगुणों की क्रियाविधि समझनी चाहिए तथा उसे निवृत्त होने का प्रयास भी करना चाहिए। उसके लिए हमें त्रिगुणों की उत्पत्ति, स्वरूप, क्रियाविधि आदि का अध्ययन करना परम आवश्यक है। इससे त्रिगुणों का व्यवहारिक स्वरूप समझ में आ जाता है। एक सामान्य मनुष्य त्रिगुणों के बारे में कुछ नहीं जानता है तथा वह उसके प्रभाव से भी अपरिचित रहता है। परन्तु प्रत्येक मनुष्य त्रिगुणों के प्रभाव से प्रभावित रहता है। यह एक विशेष बात है। हम सभी जिसके प्रभाव से प्रभावित हों और उसके बारे में कुछ न जाने तो इस तथ्य को आश्चर्यप्रद ही कहा जाएगा। इसलिए हम सभी को त्रिगुणों के बारे में अवश्य ही जानना चाहिए।

मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन त्रिगुणों के प्रभाव से चलता रहता है। कभी सात्त्विक गुण के अधीन मनुष्य कार्य करता है और कभी राजस और तामस गुणों के अधीन उसकी अनेक प्रकार की चेष्टाऐं होती रहती हैं। सम्पूर्ण जीवन की क्रियाऐं इन्हीं त्रिगुणों के अधीन चलती हैं। यह पूर्णरूपेण स्पष्ट है। यहां पर एक तथ्य उल्लेखनीय है कि जब तक हम त्रिगुणों के प्रभाव से प्रभावित रहते हैं तब तक त्रिगुणों से अतीत नहीं हो सकते और जब तक त्रिगुणातीत नहीं होते तब तक हमें परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता। इसकारण तत्त्व दर्शन का समग्र दर्शन भी त्रिगुणों पर ही आधारित है। इस तथ्य से भी त्रिगुणों की महत्ता बढ़ जाती है तथा उसके विषय की सज्ञानता की आवश्यकता अनिवार्य प्रतीत होती है। साधारण मनुष्य के साथ जो मुमुक्ष पुरूष हैं उनके लिए त्रिगुणों के बारे में ज्ञान होना अनिवार्य है। इस समस्त तथ्य को दृष्टिगत रखकर सत्त्व, रज,तम गुण और उनके प्रभाव के विषय को व्याख्यापित किया गया है। आशा है सभी लोग इससे लाभान्वित होंगे।

○ ब्रह्मशंकर शास्त्री

(1) त्रिगुण अर्थात् सत्त्व, रज, तम क्या है ?

आयुर्वेद में तीन प्रकार के ज्वरों अर्थात् बुखार का वर्णन किया गया है। इन तीनों प्रकार के ज्वरों को 1–वात ज्वर 2–पित्त ज्वर 3–कफ ज्वर कहते हैं। मानव शरीर पर इन तीन प्रकार के ज्वरों का प्रभाव पृथक्–पृथक् रूप से रहता है। प्रत्येक ज्वर के पृथक्–पृथक् लक्षण मानव शरीर पर देखे जा सकते हैं। वात ज्वर का पृथक् प्रभाव रहता है। कफ और पित्त ज्वर का भी पृथक् प्रभाव हमारे शरीर पर रहता है। मानव शरीर जब ज्वर से प्रभावित हो जाता है तब शरीर में सुस्ती, बेचैनी, त्वचा का मुर्झाना, कार्य करने की इच्छा न करना, भोजन में अरूचि आदि आदि रहती है। इस प्रकार ज्वर शरीर में रहता है तो उसका प्रभाव देखा जा सकता है। शरीर जब ज्वर से प्रभावित रहता है तो हमें उसकी उपस्थिति का आभास हो जाता है और उसका प्रभाव भी दीखता है। ज्वर का प्रभाव अधिक बढ़ने पर अर्थात् तापमान में अधिक वृद्धि हो जाने पर मनुष्य सामान्य नहीं रह पाता और अंततः उसकी स्थिति उठने बैठने की भी नहीं रह पाती। इस स्थिति में मनुष्य अक्रियाशील सा हो जाता है।

ज्वर की तरह से ही सत्त्व, रज, तम गुणों का भी शरीर पर पर्याप्त प्रभाव रहता है। यह गुण शरीर में रहते हैं तथा अपने प्रभाव से शरीर को प्रभावित करते हैं। शरीर में जब ज्वर का प्रभाव बढ़ता तो शरीर का तापमान बढ़ता जाता है। अधिक तापमान बढ़ने पर हम उठने बैठने में भी असमर्थ हो जाते हैं। उसी प्रकार मनुष्य शरीर में जब जो गुण सक्रिय हो जाता है उसका प्रभाव दीखता है। सात्त्विक गुण के बढ़ जाने पर सात्त्विक क्रियाऐं प्रकट हो जाती हैं। रजोगुण के बढ़ जाने पर राजसी क्रियाऐं दीखती हैं और तमोगुण के बढ़ जाने पर तामसी क्रियाऐं दीखती हैं। प्रत्येक मनुष्य इन तीनों गुणों से ही प्रभावित रहता है। इन तीनों गुणो से पृथक् नहीं जा सकता है। किसी मनुष्य में सात्त्विक गुणों की प्रधानता होती है तथा अन्य किसी में रज और तम गुण की प्रधानता रहती है। ऐसा नहीं हो सकता है कि मनुष्य किसी न किसी गुण से प्रभावित न रहे। जैसे वायु सर्वत्र विद्यमान है वैसे ही यह त्रिगुण भी प्रत्येक मनुष्य में रहते हैं। जिस गुण की प्रधानता मनुष्य में होती है उसका प्रभाव तथा लक्षण स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। हम उसके प्रभाव का अनुमान मनुष्य की चेष्टाओं से लगाते हैं। त्रिगुण को और स्पष्ट समझने के लिए त्रिगुणों के स्वरूप तथा उनकी क्रियाविधि को पृथक्–पृथक् प्रकार से यहां पर वर्णित किया जा रहा है।

(क) त्रिगुण का स्वरूप :–

परमात्मा, जीव, प्रकृति की तरह से प्रकृतिजन्य त्रिगुण का स्वरूप भी अव्यक्त है। अव्यक्त का अर्थ है कि उसका स्वरूप प्रकट नहीं है। प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं होता है। मन बुद्धि

और अहंकार भी अव्यक्त रहकर व्यक्त की तरह से ही कार्य करते हैं। उसी प्रकार त्रिगुण भी अव्यक्त रहकर मनुष्य शरीर में व्यक्त की तरह से कार्य करते हैं। मन, बुद्धि तथा अहंकार पर त्रिगुणों का प्रभाव रहता है। अर्थात् तीनों ही त्रिगुणों के प्रभाव से प्रभावित रहते हैं। इसलिए मन बुद्धि अहंकार तीन तत्त्वों में त्रिगुण विशिष्ट है क्योंकि हमारे शरीर के समस्त कार्य तेरह करणों के माध्यम से सम्पादित होते हैं। इस कारण त्रिगुणों का प्रभाव सभी 13 करणों पर पड़ता है। साथ ही त्रिगुण की विशेषता यह है कि सम्पूर्ण शरीर पर त्रिगुण अपना प्रभाव डालते रहते हैं। जैसे तमोगुण से प्रभावित मनुष्य का शरीर निद्रा, आलस्य तथा प्रमाद से आवृत हो जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि त्रिगुण का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर रहता है। जो शरीर हमें बाह्य रूप से दिखता है जिसे स्थूल शरीर कहते हैं उस पर तो त्रिगुण का प्रभाव दीखता ही परन्तु मानव शरीर की आतंरिक क्रियाओं पर भी त्रिगुणों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

जीव अव्यक्त है परन्तु शरीर में उसका प्रभाव सर्वत्र प्रतीत होता है। शरीर में जो चैतन्यता, चेष्टा आदि गुण हैं वे जीव के कारण ही होते हैं। जब तक जीव शरीर में रहता है तब तक उसे सामान्य भाषा में जीवात्मा कहा जाता है और उसकी स्थिति शरीर में सर्वत्र रहती है। एक अति सूक्ष्म जीवात्मा समान रूप से सम्पूर्ण शरीर में स्थित है यह विशेष बात है तथा यह जीवात्मा की विशिष्ट शक्ति है कि वह परिमाण में अत्यंत सूक्ष्म होने के बावजूद भी सम्पूर्ण शरीर में अपना प्रभाव रखती है और दिखाती है। उसी प्रकार त्रिगुण भी सम्पूर्ण शरीर को अपने प्रभाव में लिए रहते हैं तथा अव्यक्त रहकर व्यक्त की तरह से कार्य करते हैं। ज्वर का प्रभाव समग्र शरीर पर रहता है। इसी प्रकार तीनों अव्यक्त गुण भी मानव शरीर को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक गुण के पृथक्–पृथक् स्वरूपों का आप अवलोकन करें।

(एक) सात्त्विक गुण के तीन स्वरूप – निर्मल, प्रकाशक, अनामय :–

सात्त्विक गुण के तीन स्वरूप हैं जिन्हें निर्मल अर्थात् मलरहित प्रकाशक अर्थात् ज्योतियुक्त और अनामय अर्थात् विकाररहित कहा जाता है। सत्त्व गुण के तीनों स्वरूप का विवरण निम्न प्रकार है।

(अ) निर्मल स्वरूप :–

सात्त्विक गुण का स्वरूप निर्मल है। निर्मल का अर्थ मलरहित होता है। जैसे कोई मनुष्य शरीर को स्नानादि से शुद्ध करके स्वच्छ वस्त्र धारण कर लेता है तो उसे लोग साधारणतया निर्मल अर्थात स्वच्छ मानते हैं यदि मनुष्य स्नान आदि न करे। गंदे कपड़े

पहने रहे तो उसे गंदा ही कहा जाएगा। स्वच्छ और गंदे को समझने के लिए यह उदाहरण दिया गया। वैसे ही सात्त्विक गुण निर्मल है, स्वच्छ है उसमें गंदगी नहीं है। इसी कारण जब मनुष्य सात्त्विक गुणों से आवृत हो जाता है। आच्छादित होता है तो वह स्वयं भी स्वच्छ रहने का इच्छुक होता है और सम्पर्कित लोगों को भी स्वच्छ रखना चाहता है। सात्त्विक गुण निर्मल, स्वच्छ है, इसका स्वरूप निर्मल और स्वच्छ है। इसलिए इसके ग्रहण करने से शरीर में निर्मलता और स्वच्छता आ जाती है। मनुष्य के अंतःकरण में जो कुविचार होते हैं वह भी सात्त्विक गुणों के आने से स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। यही सात्त्विक गुण का प्रथम स्वरूप है। जीव भी निर्मल होता है। अर्थात् उसमें मल किंचित मात्र नहीं होता है। परन्तु जीव की निर्मलता और गुणों की निर्मलता में अंतर रहता है। यह अंतर चेतन और जड़ के रूप में रहता है। अर्थात् जीव चेतन है वह चेतन रहकर मल से रहित है और गुण जड़ है वह जड़ के रूप में निर्मल है। प्रकृति भी जड़ है इसलिए उसके द्वारा उत्पन्न गुण भी जड़ है।

(ब) प्रकाशक :–

सूर्य, चन्द्र, विद्युत, अग्नि, आदि सभी को प्रकाश देते हैं। इस कारण इन्हें प्रकाशक कहा जाता है। प्रकाशक शक्ति अंधकार की विनाशक है। जहां कहीं प्रकाशक वस्तु रहती है, वहां का अंधकार स्वतः ही समाप्त हो जाता है। इस कारण सात्त्विक गुण का स्वरूप प्रकाशक है और यह प्रकाशक स्वरूप मनुष्य में प्रकाश अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति कर देता है। सात्त्विक गुण के प्रभाव से मनुष्य को अपने कर्तव्य अकर्तव्य का, धर्म अधर्म का, नीति अनीति आदि का सामान्य रूप से ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान, सात्त्विक गुण के प्रकाशक स्वरूप के प्रभाव के कारण ही होता है। सात्त्विक मनुष्य को कर्म विकर्म का, धर्म अधर्म का, नीति अनीति का ज्ञान होता है अर्थात् वह इनमें अंतर को जानता है। जब सात्त्विक गुण अपना प्रकाशक स्वरूप मनुष्य में प्रकट करता है तो मनुष्य के अन्दर अनेक प्रकार के दैवीय गुण स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं और वह समाज में अन्य मनुष्यों से पृथक् प्रतीत होता है।

(स) अनामय :–

अनामय का अर्थ विकाररहित होना होता है। विकार रहित होने के सामन्य रूप से दो अर्थ होते है। 1–परिवर्तन रहित होना और 2–दोषों से सर्वथा मुक्त होना। विकाररहित अर्थात् निर्विकार गुण जीवात्मा का भी है, क्योंकि उसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होता है। जीवात्मा जैसे एक लाख वर्ष पूर्व में थी वैसी ही आज भी है। इसमें कोई परिवर्तन आज तक नहीं हुआ है। जीवात्मा का स्वरूप अपिरवर्तनीय होने के कारण उसे

निर्विकार कहा जाता है। सात्त्विक गुण जीव की तरह से निर्विकार नहीं हो सकता। इस कारण इसके विकाररहित होने का दूसरा अर्थ है सात्त्विक गुण में दोष नहीं है। निर्मल होने के कारण प्रकाशक होने के कारण भी वह दोषों से रहित है जैसे स्वच्छ सफेद कपड़ों में कोई दाग यदि न हो तो उसे दागरहित कहा जाएगा। स्वच्छ और सफेद कपड़ों में कोई दाग हो तो उसे विकार कहते हैं। इसी प्रकार दोष है। जैसे क्रोध, अहंकार, राग, ईर्ष्या, मद, मत्सर आदि आदि अनेक अवगुण अर्थात् दोष सात्त्विक गुण में नहीं है। इस कारण जो पूर्ण सात्त्विक गुण धारण कर लेता है उसमें भी यह समस्त दोष स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं और वह दोषरहित प्रतीत होता है। इसी प्रकार सात्त्विक गुण का तीसरा स्वरूप अनामय अर्थात् निर्विकार है जिसे आप दोषरहित मान सकते हैं।

(दो) रजोगुण का स्वरूप :–

रजोगुण राग स्वरूप कहा जाता है। संसार में जो सुख हमें प्रतीत होता है इस कारण उस सुख को प्राप्त करने की इच्छा रहती है। यह इच्छा सभी मनुष्यों में पायी जाती है। इसी को सामान्य रूप से राग मानना चाहिए। रजोगुण, तृष्णा और आसक्ति से उत्पन्न होने के कारण राग स्वरूप है। जैसे मनुष्य को प्यास लगती है तो वह जल पीकर अपनी प्यास को समाप्त कर लेता है। वैसे ही सांसारिक भोगों की तृष्णा अर्थात् प्यास भी रहती है और उन्हें प्राप्त करने का मनुष्य प्रयास करता है। सांसारिक भोग प्राप्त होने पर तृष्णा अर्थात् प्यास कुछ समय के लिए समाप्त हो जाती है और पुनः समय के साथ उत्पन्न होती है। तृष्णा का प्रमुख गुण है कभी समाप्त न होना तथा भोग की पुनः इच्छा उत्पन्न कर देना जैसे प्यास लगने पर पानी पीकर प्यास बुझाई जा सकती है परन्तु पुनः प्यास का आभास होता है। यह एक प्रकार की स्वाभाविक तृष्णा है।

संसार में अनेक वस्तुऐं हैं और अनेक व्यक्ति भी हैं जिनसे हमें स्नेह हो जाता है और इसी स्नेह के कारण हम उन वस्तुओं और व्यक्तियों को छोड़ना नहीं चाहते हैं। उनसे चिपके रहते हैं। उनका किसी कारण से वियोग यदि होता है तो हम दुखी होते हैं और शोकग्रस्त हो जाते हैं। यह सब वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति आसक्ति के कारण ही होता है। सांसारिक आसक्तियों में हम सभी जीते हैं और अंततः मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते हैं इसी तृष्णा तथा आसक्ति से राजसी गुण की उत्पत्ति होती है। इस कारण इसे राग स्वरूप कहा जाता है। तृष्णा तथा आसक्ति से मनुष्य को प्रियता और अच्छेपन की प्रतीति होती है तथा उसे सुख का मिथ्याभास होता है। इसी को राग भी मानना चाहिए। इस प्रकार रजो गुण का जो स्वरूप है वह राग के रूप में है। जब मनुष्य रजोगुण से आवृत हो जाता है तब वह संसार की वस्तुओं और व्यक्तियों से स्नेह करने लगता है और उनसे सुख की इच्छा करता है। मिलने पर उसे प्रसन्नता होती है और न मिलने पर उसे दुःख होता है।

(तीन) तमोगुण का स्वरूप :–तमोगुण निद्रा, आलस्य तथा प्रमाद के स्वरूप में प्रकट होता है और इसकी उत्पत्ति अज्ञान से मानी जाती है। ज्ञान को प्रकाश का स्वरूप माना जाता है और अज्ञान को अंधकार का स्वरूप माना जाता है। प्रकाश में जगत की समस्त वस्तुऐं स्पष्ट रूप से प्रतीत होती हैं। वस्तुएं जो हैं, जितनी हैं, जैसी हैं, जिस आकार वाली हैं वह सबकी सब प्रकाश में स्पष्ट रूप से प्रतीत होती हैं। अंधकार में या तो वस्तुऐं प्रतीत नहीं होती हैं या धुंधली प्रतीत होने के कारण स्पष्ट रूप से देखी नहीं जा सकती हैं अथवा अन्य कुछ आभासित होती हैं। यही अज्ञान का कार्य और स्वरूप है। शरीर में तमोगुण की प्रधानता जब होती हैं तो प्रत्येक तथ्य में भ्रम रहता है। किसी तथ्य का उलटा तथा विपरीत अर्थ निकालने का मनुष्य प्रयास करता है। घोर संशयग्रस्तता रहती है। तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न हुआ माना जाता है। जब शरीर में निद्रा, आलस्य और प्रमाद की प्रधानता हो जावे तो समझना चाहिए कि तमोगुण बढ़ा हुआ है। निद्रा, आलस्य, प्रमाद भी तमोगुण, का स्पष्ट स्वरूप है। जिससे मनुष्य प्रत्येक तथ्य को सही सही समझ नहीं पाता है और उसका कुछ अर्थ निकाला करता है। इसी प्रकार त्रिगुणों अर्थात् सत्त्व, रज, तम के स्वरूप को हम अपने शरीर के प्रभाव से समझ सकते हैं। हमें त्रिगुणों के स्वरूप का जब ज्ञान हो जाता है तब हम उसके प्रभाव को भी समझ सकते हैं। वैसे सामान्य रूप से त्रिगुणों के प्रभाव को समझा जा पाना असंभव है। जैसे संसार में अनेक प्रकार की वस्तुएं पृथक्–पृथक् रंगों वाली होती हैं और उन रंगों के आधार पर ही उन वस्तुओं के स्वरूप का विनिश्चय होता है उसी प्रकार त्रिगुणों के स्वरूप के विनिश्चय के लिए उनके गुणों को ही आधार माना जाता है।

(ख) त्रिगुणों की क्रिया विधि :–

त्रिगुणों अर्थात् सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों की क्रियाविधि भी पृथक्–पृथक् प्रकार की है। जैसे वात ज्वर के पृथक् प्रभाव और लक्षण शरीर पर प्रतीत होते हैं, वैसे कफ ज्वर और वात ज्वर के पृथक् लक्षण मानव शरीर पर प्रतीत होते हैं, जिन्हें योग्य चिकित्सक समझ जाता है और उसी के अनुकूल ज्वर के निवारण हेतु औषधि देता है। ऐसे सात्त्विक गुण की क्रिया विधि पृथक्–पृथक् रजोगुण की क्रियाविधि पृथक् और तमोगुण की क्रियाविधि सत्त्व और रज से पृथक् है। प्रत्येक गुण अपने अपने प्रभाव के अनुसार कार्य करता है।

(एक) सत्त्व गुण की क्रिया विधि :–

जब मनुष्य में सत्त्व गुण की बहुलता हो जाती है तो उस मनुष्य में अनेक प्रकार के गुण स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। सत्त्व गुण की वृद्धि में मनुष्य में अन्य मनुष्यों के प्रति सहजता का भाव आ जाता है। वह दूसरों के प्रति प्रार्थना पूर्वक बातचीत करता है अन्य

लोगों से सहयोग की वृत्ति उत्पन्न हो जाती है तथा वह स्वयं को जानने की इच्छा करता है। ऐसे व्यक्ति में परमात्मा के प्रति अटूट श्रद्धा और आस्था उत्पन्न होती है और वह असामाजिक तथा अनैतिक कार्यो के सम्पादन में लज्जा का आभास करता है। संसार की वस्तुओं के त्याग की भावना प्रबल होती है तथा वह सत्य भाषण का सम्पादन करता है। यज्ञ दान तप आदि कर्मो में उसकी स्वतः और स्वाभाविक प्रवृत्ति हो जाती है। इस प्रकार सत्त्व गुण की क्रियाविधि मनुष्य के शरीर में प्रतीत होती है दीखती है और उसका आभास हम उक्त गुणों के आधार पर कर सकते हैं।

(दो) रजोगुण की क्रियाविधि :–

जब मनुष्य में रजोगुण की बहुलता हो जाती है तो उसमें अनेक प्रकार के सांसारिक कार्य करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। वह संसार की वस्तुओं और भोगों को प्राप्त करने की इच्छा करता है तथा उसी के निमित्त उसमें परिश्रम का भाव उत्पन्न हो जाता है। अनेक प्रकार की सांसारिक कामनाओं का उदय हो जाना तथा उन कामनाओं की पूर्ति का प्रयास करना रजोगुण के प्रभाव से ही होता है। नाना प्रकार के भोगों में सहज प्रवृत्ति का रहना और उन भोगों की अप्राप्ति में असंतोष उत्पन्न होना तथा आंतरिक रूप से अशान्त रहना ही रजोगुण की क्रिया विधि है। उक्त प्रकार की वृत्तियों को देखकर हम मनुष्य में रजोगुण की प्रबलता का और उसकी क्रियाविधि का आंकलन कर सकते हैं तथा यह जान सकते हैं कि अमुक मनुष्य रजोगुण से प्रभावित है।

(तीन) तमोगुण की क्रियाविधि :–

जब मनुष्य में तमोगुण बढ़ जाता है तो उसमें अनेक प्रकार के अवगुण स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। विशेष रूप से वह निद्रा, आलस्य और कर्तव्य कर्मो को न करने की ओर उन्मुख हो जाता है। तमोगुण से आच्छादित मनुष्य अनेक प्रकार की व्यर्थ आशाऐं करता है। दीनता का भाव उसमें रहता है तथा वह बातचीत में मूढ़ता के भाव का प्रदर्शन करता है। अनावश्यक श्रम करना, तथा विकृत भोग वृत्ति तमोगुण की विशेष क्रियाविधि है इसलिए तमोगुण से आच्छादित मनुष्य में मोह, लोभ, मिथ्याचारिता, शोक, दुख, आदि स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार के अवगुणों को देखकर हम यह जान सकते हैं कि अमुक व्यक्ति तमोगुण से पूरी तरह आच्छादित है और उसके शरीर की क्रियाओं से तमो गुण की क्रियाविधि स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है।

त्रिगुण अपने प्रभाव से अपने अपने गुणों को स्वतः ही प्रकट कर देता है। जो गुण शरीर में प्रभावी होता है उस गुण की क्रिया शरीर में प्रकट हो जाती है। क्रिया से उस गुण का प्रभाव शरीर पर पड़ता है और प्रत्यक्ष दिखने भी लगता है। जैसे मादक द्रव्यों के

सेवन से मादक द्रव्यों का प्रभाव शरीर पर प्रतीत होता है। वैसे ही गुणों का प्रभाव भी शरीर पर प्रतीत होता है और वे गुण मानव शरीर को पूरी तरह से प्रभावित करते हैं जिससे गुणों की क्रिया विधि सहजरूप से समझ में आती है।

(2) त्रिगुणों की उत्पत्ति और कारण : –

परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में प्रकृति का निर्माण किया। वैसे प्रकृति को अनादि कहा जाता है, परन्तु जब भी प्रकृति का निर्माण किया गया होगा तब वह परमात्मा के संकल्प से ही किया गया होगा, इसलिए प्रकृति परमात्मा के द्वारा संकल्पित शक्ति है। इसी संकल्पित शक्ति प्रकृति ने तीनों गुण सत्त्व, रज, तम का निर्माण किया। अर्थात् उन्हें उत्पन्न कर दिया। इसलिए इन त्रिगुणों को प्रकृतिजन्य कहा जाता है। प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण इन त्रिगुणों का प्रभाव देव, मनुष्य, त्रिर्यक, समस्त योनियों में रहता है। इसका अभिप्राय यह है कि इस ब्रह्मांड के प्रत्येक जीव पर त्रिगुणों का प्रभाव है। कोई भी इनके प्रभाव से विमुक्त नही है। विशेषकर मनुष्य पर इन त्रिगुणों का स्पष्ट प्रभाव रहता है। इस स्थल पर मनुष्य पर त्रिगुणों के प्रभाव से सम्बंधित चर्चा हो रही है, इस कारण त्रिगुणों का मनुष्य पर क्या प्रभाव है? इस विषय की प्रधानता है।

परमात्मा ने प्रकृति की उत्पत्ति का संकल्प करके त्रिगुणों की उत्पत्ति प्रकृति के द्वारा क्यों करवाई इस महत्वपूर्ण तथ्य पर विचार करने से कई तथ्य प्रकट हो जाते हैं, जो तथ्य गहन चिंतन से प्रकट होते हैं। उनमें से कुछ का अवलोकन कीजिए।

(क) मनुष्य त्रिगुणों में ही फंसा रहे :–

इस जगत में, इस ब्रह्मांड में परमात्मा ने प्रकृति के माध्यम से असंख्य वस्तुऐं और स्थितियां निर्मित कर दी हैं। मनुष्य को इन वस्तुओं और स्थितियों के आभास के लिए इन्द्रियां प्रदान की गई हैं, जिससे वह समस्त वस्तुओं का आभास करके उनके व्यवहार से सुख और आनन्द प्राप्त कर सकता है। मनुष्य वस्तुओं को देखकर आनन्दित होता है तथा मधुर ध्वनि में भी सुख का आभास करता है। सुस्वाद भोजन से आनन्द की अनुभूति कर लेता है। कोमल वस्तुओं के स्पर्श से भी उसमें सुख की अनुभूति रहती है। यह अनेक प्रकार की अनुभूति प्रकृति का कार्यरूप है। यदि उपरोक्त प्रकार के आनन्द की पृथक्–पृथक् अनुभूति न होती तो मनुष्य के जीवन में पूरी तरह से नीरसता रहती और वह पृथक्–पृथक् प्रकार के सुख और आनन्द की अनुभूति के तथ्यों से विलग रहता। संसार के आनन्द में फंसता नहीं। मनोरम दृश्यों, मनोहारी वस्तुओं, सुस्वाद व्यंजनों, मधुर गीतों, सुगन्धों को परमात्मा ने मनुष्य के लिए प्रकृति के माध्यम से बनाया है। इसके अतिरिक्त असंख्य वस्तुओं को निर्मित कर दिया है। यह सब मनुष्य को अपने में उलझाए रखते हैं।

त्रिगुणों के निर्माण से मनुष्य मुख्यतः तीन प्रकार का हो गया। अर्थात् मनुष्य की तीन कोटियां हो गईं जिन्हें सात्त्विक, राजस और तामस कहा जाता है। सात्त्विक मनुष्य की रूचि वाले पदार्थ ही जगत में हैं। राजसी मनुष्यों की रूचि के अनुसार भी पदार्थ इस जगत में उपलबध हैं तथा तामसी वृत्ति के मनुष्यों के लिए हजारों प्रकार के पदार्थ तथा भोगों की उपलब्धता भी है। इस प्रकार जो भी पदार्थ हैं उनमें प्रत्येक गुण वाला मनुष्य फंसा रहता है। जैसे हम किसी भोजनालय में जाते हैं तो वहां पर प्रत्येक प्रकार का, प्रत्येक रूचि का भोजन रहता है।, मीठा, खट्टा, नमकीन आदि विविध प्रकार का भोजन अपनी रूचि के अनुसार प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार इस जगत में परमात्मा ने विविध प्रकार की वस्तुऐं बनाकर तीनों प्रकार के पुरूषों हेतु उपलब्ध करवाई हैं। प्रत्येक मनुष्य अपनी वृत्ति के अनुसार सुख भोग करके जीवनपर्यंत इन्हीं त्रिगुणों में फंसा रहे।

(ख) त्रिगुणातीत स्थिति प्राप्त न कर सकें :–

जब तक मनुष्य को त्रिगुणातीत स्थिति प्राप्त नहीं होती है तब तक मनुष्य अपने जीवन के परम पुरूषार्थ मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है। त्रिगुणातीत का अर्थ है सत्त्व, रज, तम गुणों से अतीत हो जाना। परमात्मा ने त्रिगुणों की उत्पत्ति करके मनुष्य को भ्रमित करने का कार्य किया है जिससे सहजता से मनुष्य परमात्मा तक न पहुंच सके। मुक्ति अर्थात् परमात्मा का साक्षात्कार का जो पथ है वह अत्यंत दुष्तर है जिसे साधनारूपी वाहन से चलकर प्राप्त किया जा पाना संभव है। हम साधनारूपी वाहन को जितनी अधिक गति से चलाते हैं उतनी ही शीघ्र हमें अभीष्ट तत्त्व मुक्ति की उपलब्धि हो जाती है।

मुक्ति के पथ पर त्रिगुणों ने अनेक प्रकार की लुभावनी और आकर्षक वस्तुऐं उत्पन्न कर दी हैं फैला दी हैं। बिछा दी हैं, जिनमें साधक अटकता रहता है। इस कारण मनुष्य के लिए सम्पूर्ण संसार में त्रिगुणों ने लुभावनी आकर्षण वस्तुऐं बिखेरी हैं जिनमें वह अनायास ही फंस जाता है। मनुष्य की रूचि पृथक्–पृथक् होती है और वह अपनी रूचि के अनुकूल ही वस्तुओं को संसार में खोजता फिरता है। सात्त्विक विचारधारा का मनुष्य पुष्प की सुगन्ध को खोजता है। राजसी राजसी प्रवृत्ति का मनुष्य इत्र को खोजता है और तामसी विचारधारा का मनुष्य दुर्गन्ध को खोजता है। प्रत्येक के लिए त्रिगुणों ने उसकी रूचि के अनुरूप वस्तुओं की व्यवस्था की है। नाना प्रकार की पृथक्–पृथक् भोजन सामग्री की व्यवस्था त्रिगुणों ने कर रखी है। सात्त्विक मनुष्य के लिए रस युक्त, चिकने पदार्थो और फलों आदि की व्यवस्था है। राजसी पुरूषों के लिए कडुवे, खट्टे, नमकीन खाद्य पदार्थो की व्यवस्था है और तामसी मनुष्यों के लिए बासी, झूठे, दुर्गन्धयुक्त खाद्य पदार्थो की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार जिसे जैसी रूचि हो उसे उसी प्रकार भोजन प्राप्त हो जाता है और

वह उसी में फंसा रहता है। सात्त्विक, राजस तथा तामस पुरूषों के संगीत भी पृथक् पृथक् है। प्रत्येक को अपनी प्रकार का संगीत प्रिय होता है। सात्त्विक पुरूष को शान्त, मृदु, कर्ण प्रिय संगीत प्रिय होता है। राजसी पुरूष को श्रृंगार रस से युक्त रस की आकांक्षा रहती है तथा तामसी पुरूषों को बहुत तेज और भद्दे संगीत प्रिय हैं। समस्त प्रकार के संगीत की व्यवस्था त्रिगुणों ने कर रखी है जिससे मनुष्य अनेक प्रकार से उनमें फंसा रहे।

परमात्मा ने प्रकृति के माध्यम से इस प्रकार त्रिगुणों की उत्पत्ति की तथा उन्हें मनुष्य को अनेक आकर्षक वस्तुओं को दिखाकर फंसा दिया। वस्तुतः यह मानव शरीर परमात्मा के चिंतन के लिए हमें प्राप्त हुआ है परन्तु त्रिगुणों के प्रभाव से मनुष्य संसार के चिंतन में व्यस्त रहता है। दिन रात संसार के बारे में उसके भोगों के बारे में विचार करता है तथा उसी में अपना जीवन समाप्त कर देता है। इन त्रिगुणों की शक्ति सामर्थ्य और प्रभाव की यही विशेषतः है। हम सभी जीवनपर्यन्त त्रिगुणों के प्रभाव में रहते हैं और उसके जाल को तथा प्रभाव को जान नहीं पाते हैं। इस कारण त्रिगुणों की उत्पत्ति परमात्मा के द्वारा इसलिए की गई कि ताकि मनुष्य त्रिगुणों में फंसकर परमात्मा तक न पहुंच पाये।

(3) त्रिगुणों का प्रमुख कार्य :–

परमात्मा की रचनात्मक शक्ति मूल प्रकृति के दो भाग हैं। एक अपराप्रकृति और दूसरा पराप्रकृति। अपरा प्रकृति के आठ तत्त्व है जिन्हें आकाश, अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, मन, बुद्धि और अहंकार कहा जाता है। परा प्रकृति का एक प्रकार है, जिसे जीव कहते हैं। यह मानव शरीर इन उपरोक्त नौ तत्त्वों से मिलकर निर्मित है तथा चेतन है। जीव चूंकि परमात्मा का अंश है, इस कारण इसको शरीर में बांधा जा पाना संभव नहीं था। जीव को शरीर में बांधने के लिए त्रिगुणों की प्रमुख भूमिका है। अविनाशी जीव को त्रिगुण ही शरीर में बंधन देते हैं और इस प्रकार जीवात्मा शरीर में बंधी रहती है। त्रिगुणों का यह विशिष्ट कार्य है तथा इसे त्रिगुणों के प्रमुख कार्य के रूप में कहा जाएगा। त्रिगुण के अन्य कार्यो का आगे वर्णन होगा परन्तु यह कार्य विशिष्ट और प्रमुख था इस कारण इसे वर्णित कर दिया गया।

अपरा प्रकृति मानव शरीर का निर्माण कर देती है। अपरा प्रकृति के प्रथम पांच तत्त्व आकाश, अग्नि, जल, वायु तथा पृथ्वी से शरीर का निर्माण होता है। इन पंचमहाभूतों की तन्मात्राऐं भी पांच हैं। आकाश की तन्मात्रा शब्द है, अग्नि की तन्मात्रा रूप है, जल की तन्मात्रा रस है। वायु की तन्मात्रा स्पर्श है और पृथ्वी की तन्मात्रा गंध है। शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं जिन्हें कर्ण, नेत्र, जिह्वा, त्वचा तथा नासिका कहा जाता है। यह पंच महाभूत ही अपनी तन्मात्राओं को इन ज्ञानेन्द्रियों को प्रदान कर देते हैं जिससे कर्ण का गुण शब्द

हो जाता है। नेत्र का गुण रूप हो जाता है। जिह्वा का गुण रस हो जाता है। त्वचा का गुण स्पर्श हो जाता है और नासिका का गुण गन्ध हो जाता है। अपरा प्रकृति के तीन शेष तत्त्व मन, बुद्धि, अहंकार भी सूक्ष्म रूप से शरीर में उपलब्ध हो जाते हैं। इस प्रकार आठ तत्त्वों से शरीर का निर्माण तो हो जाता है परन्तु उस निर्मित शरीर में चेतन्यता नहीं आती है। इसलिए परा प्रकृति का एक मात्र तत्त्व जीव इसमें आकर उसे चैतन्यता प्रदान करता है। जीव को शरीर में त्रिगुण ही बंधन दे देते हैं। त्रिगुण की भूमिका इसी कारण महत्वपूर्ण है। अब प्रश्न यह है कि यह त्रिगुण शरीर में जीवात्मा को किस प्रकार बांधते हैं इसका भी सहजतापूर्वक अवलोकन कीजिए।

(क) सत्त्व गुण जीवात्मा को सुख तथा ज्ञान की आसक्ति से बांधता है :–

सात्त्विक गुण का शरीर में जब विकास होता है तो मनुष्य को सुख की विशेष अनुभूति होती है और उसमें ज्ञान का उदय हो जाता है। सुख की विशिष्ट अनुभूति क्या है? तथा ज्ञान का आभास क्या है? इसे समझना पड़ेगा। सत्त्व गुण का जब शरीर में प्रभाव रहता है तो मनुष्य को ज्ञान अज्ञान का, कर्तव्य अकर्तव्य का बोध हो जाता है और उससे वह मात्र सत्कर्मो का ही सम्पादन करता है। जिसके बल से उसे सुख अनायास ही प्राप्त होता है। सुख प्राप्त होने पर वह सुखासक्त हो जाता है। जैसे किसी मनुष्य को सत्कर्मो के परिणाम से सांसारिक सुख प्राप्त होता है तो वह उसमें आसक्त हो जाता है तथा यह कहता है बड़ा आराम है, बड़ी ऐश्वर्य है, बड़ी प्रतिष्ठा है। इसी में उसकी आसक्ति रहती है। शरीर भी स्वस्थ रहता है। इस कारण उसे सुख का आभास होता है। सुख के आभास में वह फंस जाता है। इसी को सुख की आसक्ति कहते हैं जो जीव के बंधन का एक कारण है। अर्थात् इसी से जीवात्मा को बंधन हो जाता है।

सत्त्व गुण जब शरीर में विकसित होता है तो मनुष्य को सुख की स्वतः अनुभूति होती है रजोगुण तथा तमोगुण से आवृत शरीर को सुख की वैसी अनुभूति नहीं होती है। इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट समझने के लिए यह जानें कि तमोगुण से प्रभावित शरीर निद्रा, आलस्य और प्रमाद से आवृत रहता है जिससे उसे सुख का आभास नहीं होता है। शरीर में भारीपन रूग्णता आदि रहती है। इसी प्रकार रजोगुण के प्रभाव से शरीर मे कर्मा सक्ति रहती है और उसके प्रभाव से अशान्ति की स्वतः उत्पत्ति हो जाती है जिससे शरीर में स्फूर्ति, चुस्ती–फुर्ती आदि नहीं रहते। अशान्ति में सुख नहीं होता। आशान्तस्य कुतः सुखम् यह गीता जी का वचन है। इस प्रकार रजोगुणी मनुष्य को सुख का आभास नहीं होता है। सत्त्व गुण के बढ़ने पर शरीर में स्वतः ही स्फूर्ति चैतन्यता, सुखद अनुभूति अच्छा लगना, भारीपन का विनाश मन और बुद्धि में विशेष चैतन्यता रहती है। यह एक प्रकार की सुखानूभूति है। इस सुखानूभूति में यदि मनुष्य आनन्द लेता है तो सत्त्व गुण के कारण फंस

जाता है। आनन्द नहीं लेता है तो वह सत्त्व गुण का भी अतिक्रमण करके गुणों से अतीत हो जाता है। इस सुख से ही जीवात्मा को बंधन होता है।

सत्त्व गुण के प्रभाव से मनुष्य में ज्ञान की उत्पत्ति स्वतः हो जाती है। ज्ञान का अभिप्राय यह है सत्त्वगुण प्रधान मनुष्य पाप, पुण्य, अकर्तव्य, कर्तव्य, धर्म, अधर्म, नीति, अनीति, में अंतर को जान जाता है। इस अंतर को जानना ही ज्ञान का एक प्रकार है। जो अज्ञानी है अर्थात् रज और तम गुणों से आवृत है वे इस अंतर को नहीं जानते हैं। इसी कारण वे अज्ञानी हैं तथा अज्ञान से आवृत है। जब मनुष्य को पाप, पुण्य, कर्तव्य, अकर्तव्य, धर्म, अधर्म नीति, अनीति के अन्तर का ज्ञान हो जाता है, तो इस जानकारी के प्रति भी आसक्ति हो जाती है। इस प्रकार का ज्ञानी पुरूष अपने को विशेष जानकारी वाला मानता है और सामान्य लोगों से अपने को पृथक् समझता है। यह समझ भी एक प्रकार की आसक्ति ही है। इसे ज्ञान की आसक्ति कहते हैं।

सत्त्व गुण का यह विशिष्ट गुण मनुष्य को ज्ञानासक्ति में संलग्न कर देता है। ज्ञानासक्ति से आवृत मनुष्य उस आसक्ति में आनन्दित होता है। यह बंधन है जो परमात्मा की प्राप्ति में बाधक है। इसी प्रकार ज्ञान की आसक्ति से सत्त्व गुण जीवात्मा को बंधन देता है और जीवात्मा ज्ञान की आसक्ति से बंध जाती है। परमात्मा का अंश जीवात्मा शरीर में ज्ञानासक्ति के कारण बंधन में आ जाता है। इस प्रकार ज्ञान की आसक्ति भी बंधन का हेतु होती है। सात्त्विक गुण सुख की आसक्ति और ज्ञान की आसक्ति से जीवात्मा को बांधता है। सात्त्विक गुण में सुख आसक्ति और ज्ञान की आसक्ति मुक्ति में विशेष बाधक रहती है। साधु, संत, उत्कृष्ट साधक को यह अनुभव रहता है कि मैं शास्त्रों का विशेष विद्वान हूं और उसके अर्थो को पारदर्शी स्वरूप में जानता हूं तथा उसे व्याख्यापित भी कर सकता हूं। इस भाव की प्रबलता से सात्त्विक अहंकार की उत्पत्ति भी हो जाती हैं सात्विक अहंकार का विष तत्त्व दर्शन में विशेष बाधा है। इस प्रकार सत्त्व गुण जीवात्मा को सुख तथा ज्ञान की आसक्ति से बांध देता है।

(ख) रजोगुण कर्मासक्ति से जीवात्मा को बांधता :–

रजोगुण जब शरीर में बढ़ता है तो कर्मासक्ति की वृद्धि स्वतः ही हो जाती है। प्रत्येक मनुष्य संसार में नाना प्रकार की संसारिक वस्तु का उपभोग करना चाहता है। जो मनुष्य जिस स्तर का है वह उस स्तर से बहुत आगे के भोगों को भोगने की इच्छा रखता है। इसके लिए प्रयास भी करता है। एक भोग के प्राप्त हो जाने पर उसमें उसे आनंद की अनुभूति हो जाती है तो वह अपने आगे के भोग को भोगने की तृष्णा स्वतः ही उत्पन्न कर देती है। एक आनंद का अनुभव मनुष्य को दूसरे आनंद की ओर अग्रसर कर देता है। यह

क्रिया स्वाभाविक रूप से होती रहती है। भोग अनंत और असंख्य हैं। इस कारण मनुष्य की भोगों के प्रति तृष्णा कभी समाप्त नहीं होती है। वह इन्हीं को पाने के लिए नित्य नए कर्म करता है। इसी को कर्म की आसक्ति कहा जाता है। इस कर्म की आसक्ति से जीवात्मा को बंधन होता है। जीवात्मा इससे बंधती तो नहीं है परंतु बंधन में रहती है। अर्थात् जन्म–मरण के चक्र में घूमती रहती है। वर्तमान में अधिकांश मनुष्यों में एक प्रवृत्ति विशेष का उदय हो गया है कि प्रत्येक मनुष्य अपने व्यवसाय के विषय में और उसके विकास के विषय में बातें करता रहता है। अनेक प्रकार की चेष्टाऐं और गतिविधियां इसी कारण इस संबंध में रहती हैं। इस कथन का अभिप्राय यह नहीं है कि अपने व्यवसय के विकास हेतु हम कार्य न करें तथा समस्त चेष्टाऐं ही समाप्त कर दें। अपने व्यवसाय के विकास के सम्बंध में हम चाहें जहां तक प्रयास करें, परन्तु अंतोगत्वा आप जो भी अपने प्रयास से उपार्जित कर सकेंगे, वह तो विनाश होने वाला ही है और छूटने वाला है। इस कारण उस तत्त्व की प्राप्ति करना भी अभीष्ट है। व्यवसाय में अपने जीवन निर्वाह के साधन में पूर्ण आसक्त होकर और उसमें रात–दिन धन, सम्पत्ति आदि प्राप्त करने के लिए लग जाना तथा परमात्मा से विमुख हो जाना उचित नहीं है। हम जिस प्रयास अथवा प्रयत्न से अपने व्यवसाय के विकास हेतु कार्य करते हैं। उतने ही प्रयास एवं प्रयत्न से तत्त्व प्राप्ति की ओर बढ़े तो हमारा निश्चित कल्याण हो जाएगा। जब तक हम तत्त्व प्राप्ति हेतु प्रयास नहीं करेंगे तब तक हम कर्मासक्त रहेंगे। इसी कर्मासक्ति से जीवात्मा शरीर में बंधती है और असंख्य जन्मों तक बंधी रहती है। इस प्रकार तृष्णा और आसक्ति से उत्पन्न कर्म की आसक्ति से जीवात्मा में बंधन हो जाता है।

(ग) तमोगुण जीवात्मा को निद्रा और आलस्य बांधता है :–

जब मनुष्य के शरीर में तमोगुण का प्रभाव बढ़ जाता है तो उसके शरीर में निद्रा आलस्य और प्रमाद स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं। निद्रा आलस्य और प्रमाद के प्रकटीकरण का कारण तमोगुण ही है। इस प्रकार तमोगुण निद्रा, आलस्य और प्रमाद से जीवात्मा को बांध देता है। निद्रा आलस्य और प्रमाद इन तीनों तथ्यों को समझे।

(एक) निद्रा क्या है ?

मानव शरीर की तीन अवस्थाऐं होती हैं, जिन्हें जागृत अवस्था, स्वप्न अवस्था और सुषुप्ति अवस्था कहा जाता है। जागृत अवस्था में स्थूल शरीर काम करता है और स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर काम करता है और सुषुप्ति अवस्था में कारण शरीर अस्तित्त्व में रहता है। सुषुप्ति अवस्था को सहज रूप से निद्रा काल कहा जाता है। इस समय सम्पूर्ण इन्द्रियां मन, बुद्धि तथा अहंकार शान्त हो जाता है। इन्द्रियां मन में, मन बुद्धि में और बुद्धि

अहंकार में विलीन हो जाता है। इस प्रकार बुद्धि की भी समस्त क्रियाऐं शान्त हो जाती हैं। परमात्मा ने शरीर को इस प्रकार निर्मित किया है कि वह प्रातः से रात्रि तक अनेक प्रकार की क्रियाऐं करता करता थक जाता है और सुस्त हो जाता है। ऐसी अवस्था में वह विश्राम चाहता है। यह स्वाभाविक तथ्य है। दिन भर के कर्मो से थका हुआ शरीर निद्रा ग्रहण करना चाहता है। यह स्वाभाविक निद्रा तमोगुण की वृत्ति नहीं है, परन्तु तमोगुण के प्रभाव से ही आती है। यह तो सभी मनुष्यों में रहती है। इस स्वाभाविक निद्रा के अतिरिक्त जो निद्रा है। वह तमोगुण के प्रभाव से उत्पन्न हो जाती है। तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य अपनी स्वाभाविक निद्रा के अतिरिक्त निद्रा में लीन रहता है। यही निद्रा जीवात्मा को बंधन देती है जो स्वाभाविक नहीं होती है।

(दो) आलस्य :–

जब मनुष्य के शरीर में सात्त्विक गुण का प्रभाव बढता है तो उसमें चैतन्यता, स्फूर्ति, प्रकाश आदि गुणों की बहुलता रहती है। इसके प्रतिकूल जब मनुष्य तमोगुण से आच्छादित रहता है तो उसमें चैतन्यता, स्फूर्ति तथा प्रकाश का अभाव हो जाता है और आलस्य रहता है। स्फूर्ति का न होना तथा सुस्तीपन का रहना ही आलस्य का स्वरूप समझना चाहिए। आलस्य के कारण मनुष्य को जो निद्रा लेने की इच्छा रहती है वह तमोगुण के कारण ही होती है। यह जो आलस्यरूपी दोष मनुष्य में रहता है। इससे जीवात्मा को बंधन हो जाता है, क्योंकि आलस्य के कारण ही मनुष्य संसारिक कर्तव्य कर्मो में भी नहीं लगता है और साथ ही वह परमार्थिक कार्य तथा परमात्मा के स्मरणरूपी कार्य को भी नहीं सम्पादित कर पाता। इसलिए आलस्य को जीवात्मा के बंधन का कारण माना गया है।

(तीन) किसी भी कार्य के न करने की इच्छा प्रमाद के कारण ही होती है :–

यह प्रमाद तमोगुण के कारण उत्पन्न हो जाता है। जैसे प्रातःकाल समय से सोकर न जागना, दैनिक क्रिया की इच्छा न करना, समय पर स्नानादि न करना, भगवान की पूजा पाठ और स्मरण की इच्छा का अभाव हो जाना। अपने कर्तव्य कर्मो के दायित्व का समापन हो जाना। किसी आवश्यक कार्य को निरन्तर टालते रहना। यह सबके सब प्रमाद के लक्षण हैं। निद्रा आलस्य तथा प्रमाद एक दूसरे के कारण ही होते हैं। जैसे अनावश्यक निद्रा रहेगी तो आलस्य और प्रमाद भी रहेगा। आलस्य और प्रमाद रहेगा तो निद्रा भी रहेगी। इस प्रकार निद्रा आलस्य और प्रमाद के कारण भी जीवात्मा शरीर में बंधती है। अर्थात् तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, आलस्य और प्रमाद के कारण जीव को बंधन हो जाता है और वह जन्म मरण के चक्र में घूमता रहता है।

इस प्रकार त्रिगुणों का प्रमुख कार्य जीवात्मा को शरीर में बंधन देना है अर्थात् बांधे रखना है। त्रिगुण के कार्य एवं प्रभाव के कारण मनुष्य त्रिगुणों से अतीत नहीं हो पाता और अनेक प्रकार की योनियों में भ्रमण करता रहता है। अर्थात् पुनः जन्मता है और पुनः मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार त्रिगुणों द्वारा दोनों ही क्रियाऐं होती हैं, जिससे बंधन देना अर्थात् बांधे रखना कहा जाता है। त्रिगुणों का यह विशिष्ट गुण, शक्ति और प्रभाव है।

(4) त्रिगुणों के अन्य कार्य :–

त्रिगुणों का शरीर पर बड़ा व्यापक प्रभाव है। प्रत्येक गुण अर्थात् सत्त्व, रज, तम अपना अपना पृथक्–पृथक् प्रभाव दिखाकर विभिन्न प्रकार की वृत्तियों को मानव शरीर में उत्पन्न कर देते हैं। इन वृत्तियों को ही त्रिगुणों का कार्य कहा जाता है। सत्त्वगुण जब क्रियाशील होता है अर्थात् मानव शरीर जब सत्त्व गुण के प्रभाव से प्रभावित हो जाता है तो शरीर को विभूषित कर देता है। सात्त्विक और राजस गुणों की क्रियाशीलता के कारण विभिन्न प्रकार की वृत्तियां स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं। इसी प्रकार रज और तम गुणों का प्रभाव शरीर पर बढ़ने पर अनेक प्रकार की वृत्तियां स्वतः ही उत्पन्न हो जाती हैं। इस गुण की वृद्धि में किस प्रकार की वृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं? और उनका क्या लक्षण है? इस पर हमें विचार भी करना चाहिए और दृष्टि भी रखनी चाहिए, क्योंकि मनुष्य शरीर की चेष्टाओं को देखकर हम यह अनुमान सहजता से लगा सकते हैं कि मनुष्य शरीर में किस प्रकार के गुण का प्रभाव प्रकट हो रहा है? तीनों गुणों के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली वृत्तियों का आप अवलोकन कीजिए।

(क) सत्त्वगुण की क्रियाशीलता से उत्पन्न वृत्तियां :–

जब किसी मनुष्य के शरीर में सत्त्वगुण की प्रमुखता हो जाती है तो उसके शरीर में अनेक प्रकार के दैवीय गुणों का स्वतः ही प्रादुर्भाव हो जाता है। सत्त्व गुण की प्रधानता से जो वृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं उनमें से कुछ विशिष्ट वृत्तियों का आप अवलोकन कीजिए।

(एक) विनम्रता :–

सत्त्व गुण का शरीर में विकास होने पर मनुष्य स्वाभाविक रूप से विनम्र हो जाता है। बातचीत विनम्रता से करता है। उसके व्यवहार में विनम्रता रहती है। अंतःकरण में भी विनम्रभाव रहता है। इस प्रकार विनम्रतारूपी गुण के प्रकटीकरण से मनुष्य में सत्त्व गुण की वृद्धि माननी चाहिए। चापलूसी और विनम्रता में अंतर होता है। लोग अपने स्वार्थ के फलीकरण के लिए जो विनम्रभाव से बातचीत और व्यवहार करते हैं उस व्यवहार को

विनम्रता के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। इस प्रकार स्वार्थपरक विनम्रता सत्त्व गुण के कारण नहीं वरन् रजोगुण के कारण उत्पन्न होती है। विनम्रभाव में जब स्वार्थ परता का अभाव हो जाता है तो इसे सत्त्वगुण का कार्यरूप मानना चाहिए। मन और बुद्धि में अनावश्यक चंचलता का अभाव रहना अंतःकरण की विनम्रता है। इस कारण सत्त्व गुण से विनम्रतारूपी गुण स्वतः ही उत्पन्न हो जाता है और यह सात्त्विक गुण का कार्यरूप है।

(दो) सरलता :–

सात्त्विक गुणों की वृद्धि से मनुष्य में सरलतारूपी गुण स्वतः आ जाता है। आज कल मनुष्यों में व्यवहार की रहस्यप्रद प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयी है। किसी भी तथ्य को स्पष्ट न करना उलझावपूर्ण भाव में कहना। कही गई बातों के अर्थो पर विचार करना आदि आदि सामान्य व्यवहार में देखा जाता है। इस कारण व्यवहार अस्पष्ट सा हो गया है। कथन में जो भी कुछ कहा जाता है वह अनेक अर्थो में समझा जाता है, लिया जाता है। लोग उसके पृथक्–पृथक् भाव निकालते हैं। कुछ लोग सामान्य भाव निकालते हैं और कुछ असामान्य प्रतिकूल, रहस्यप्रद, मिथ्याभाव निकालते हैं। यह सब भी गुणों के कारण ही होता है। जो जिस गुण वाला है वह वैसा ही भाव निकाल लेता है। यह तथ्य सरलता के प्रतिकूल गुण है। सात्त्विक गुण प्रधान पुरूष उलझावपूर्ण बातचीत व व्यवहार नहीं करता है। वह बातचीत में स्पष्टवाटी सरल और तर्कपूर्ण तथ्य कहता है। यह सरलता सात्त्विक प्रधान पुरूषों का विशेष लक्षण है तथा सात्त्विक गुण का कार्यरूप है।

(तीन) आत्मचिंतन की वृत्ति :–

सात्त्विक गुण प्रधान पुरूषों में आत्मचिंतन की वृत्ति स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। रजो प्रधान पुरूष कर्म की आसक्ति में रहता है तथा तमोगुण प्रधान पुरूष निद्रा, आलस्य प्रमाद में रहकर स्वयं के विषय में कुछ भी विचार नहीं कर पाता है परन्तु सात्त्विक गुण प्रधान पुरूष अपने स्वरूप के विषय में विचार करता है और यह जानना चाहता है कि वह कहां से आया है ? कहां को जाएगा ? तथा उसे यह मनुष्य शरीर क्यों प्राप्त हुआ है ? इस मनुष्य शरीर के उद्देश्य पर वह दृष्टि डालता है तो उसे यह ज्ञात होता है कि उसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति है। इस उद्देश्य का विनिश्चय राजसी और तामसी पुरूषों में कदापि नहीं होता है। इस मानव जीवन का एक मात्र उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति है। ऐसा विनिश्चय एक मात्र सात्त्विक गुण प्रधान पुरूषों के द्वारा किया जाता है। जब तक किसी कार्य का, विषय का विनिश्चय नहीं होता है तब तक उसका सम्पादन भी स्पष्ट रूप से नहीं होता है। इस प्रकार सात्त्विक गुण प्रधान पुरूष आत्म चिंतन के द्वारा अपने जीवन के उद्देश्य का सम्यक् विनिश्चय कर लेता है। यह आत्म चिंतन की वृत्ति सात्त्विक गुण का कार्यरूप है।

आत्मचिंतन के द्वारा जीवन के उद्देश्य का विनिश्चय हो जाने पर सात्त्विक गुण प्रधान पुरूष तत्त्व प्राप्ति का प्रयास आरम्भ कर देता है। बिना चिंतन के यह कार्य नहीं हो सकता है। परमात्मा की प्राप्ति चिंतन पर ही आधारित है। बिना चिंतन के उस ओर उन्मुख नहीं हुआ जा सकता है। हम जब संसार से, संसारिक विषयों से भौतिक संदर्भो से अपना चिंतन समेटते हैं तो उसे परमात्मा में समाहित करते हैं। ऐसा करने से परमात्मा की ओर होने वाला चिंतन धीरे–धीरे विकसित होने लगता है। आत्मचिंतन की वृत्ति विकसित होती है। इस प्रकार सात्त्विक गुण की क्रियाशीलता से आत्मचिंतन की ओर मनुष्य स्वतः ही उन्मुख हो जाता है।

(चार) परमात्मा के प्रति श्रद्धा :–

मनुष्य में प्रमुखता से दो ही प्रकार की श्रद्धा होती है। एक प्रकार की श्रद्धा सांसारिक श्रद्धा कही जाती है तथा दूसरे प्रकार की श्रद्धा आध्यात्मिक श्रद्धा कही जाती है। आध्यात्मिक श्रद्धा मनुष्य को परमात्मा की ओर ले जाती है और सांसारिक श्रद्धा मनुष्य को संसार में रखती है। सात्त्विक गुण प्रधान पुरूषों में परमात्मा के प्रति श्रद्धा होती है क्योंकि जो संसार की स्थिति तथा वास्तविकता को जान जाते हैं समझ जाते हैं, वे परमात्मा में अपनी श्रद्धा को स्थापित कर लेते हैं। संसार में श्रद्धा रखने से संसार सहज भाव से उपलब्ध हो जाता है और परमात्मा के प्रति अगाध श्रद्धा रखने से परमात्मा की शीघ्र प्राप्ति हो जाती है। संसार के प्रति श्रद्धा रज और तम गुणों के कारण होती है। सात्त्विक गुण प्रधान मनुष्य परमात्मा में अपनी श्रद्धा को दृढ़ कर लेते हैं परमात्मा का अस्तित्त्व है, परमात्मा निश्चितरूपेण है उसकी ही व्यवस्था समग्र ब्रह्मांड पर लागू है। उस एक मात्र परमात्मा की शरण में जाने से ही जीव का कल्याण हो सकता है। परमात्मा से विमुखता में मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता है। यह भाव रखना ही परमात्मा के प्रति श्रद्धा रखना कहा जाता है। मनुष्य में परमात्मा के प्रति श्रद्धा सात्त्विक गुण की क्रियाशीलता के कारण होती है।

(पांच) अवैधानिक कार्यो में लज्जा भाव :–

वर्तमान समय में मनुष्य प्रत्येक कार्य धन को उपार्जित करने की दृष्टि को रखकर कर रहा है। धन प्राप्ति ही उसके लिए एक मात्र उद्देश्य हो गई है। कितना ही असमाजिक, अवैधानिक और निकृष्ट कर्म क्यों न करना पड़े वह सबका सब उसे स्वीकार हैं। इसका एक कारण है कि मनुष्य में प्रत्येक अवैधानिक कार्यो के प्रति लज्जा का समापन हो गया है। हम प्रत्येक कार्य अवैधानिकता की दृष्टि से नहीं करते हैं वरन् धन, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, पद, ऐश्वर्य की प्राप्ति की दृष्टि से करते हैं। यह इस कारण होता है क्योंकि

मनुष्य में असामाजिक, सामाजिक कार्यो के प्रति विभेद करने की शक्ति समाप्त हो गई है। तमोगुण के प्रभाव से प्रत्येक कार्य का विषय का प्रतिकूल अर्थ निकालने की वृत्ति बढ़ती जा रही है। हम यह भी नहीं जानना चाहते कि अमुक कार्य वैधानिक है अथवा अवैधानिक है, सामाजिक है अथवा असामाजिक है। यह तमोगुण के कारण ही होता है। वैसे ही रजो गुण के प्रभाव से हम धन की प्रधानता में फंसे रहते हैं और प्रत्येक कार्य को फल की दृष्टि से देखते हैं। इसके प्रतिकूल जब मनुष्य में सात्त्विक गुणों की प्रधानता आ जाती है तो वह प्रत्येक कार्य में वैधानिक और अवैधानिक, सामाजिक और असमाजिक तथ्य का विचार आ जाता है। सात्त्विक गुण प्रधान पुरूष, अवैधानिक, असमाजिक कार्यो में लज्जा का भाव रखता है। उसे समाज का भय रहता है और उसे यह भी भय रहता है इस प्रकार के कृत्यों से हमारा लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ सकता है। इस प्रकार अवैधानिक कार्यो में जो लज्जा का भाव है वह सात्त्विक गुण के कारण ही रहता है।

(छः) मन को संयमित करने की चेष्टा :–

साधारणतया मन अत्यंत चंचल और विशेष रूप से प्रमथनशील रहता है। मन संसार में निरन्तर मारा मारा फिरता है। मन की चंचलशीलता जगत के विषयों के कारण ही है। मन का भ्रमण जगत के विषयों में होता रहता है। सामान्यता मनुष्य उसकी चंचलता के कारण से परिचित नहीं हो पाते हैं। साधक जब साधना पथ पर अग्रसर होता है तो वह मन को संयमित करने की चेष्टा करता है। सात्त्विक गुणों के विकास के कारण मन संयमित होने लगता है। मन का संयमन अभ्यास तथा वैराग्य से ही हो सकता है। सात्त्विक गुण के कारण अभ्यास करने की चेष्टा साधक करता है। यह मन के संयम का अभ्यास सात्त्विक गुणों का ही कार्यरूप समझना चाहिए। मनुष्य सामान्य रूप से वैसे मन को संयमित करने का प्रयास नहीं करता है। रजोगुण से प्रभावित मनुष्य संसार को, सांसारिक भोगों को पाने की चेष्टा करता है इस कारण मन तेजी से गति करता है। तमोगुण से प्रभावित मनुष्य दुष्कर्मो की ओर प्रवृत्त हो जाता है। इस कारण उसके मन में घोर अशान्ति एवं चंचलशीलता रहती है। मात्र सात्त्विक गुण के प्रभाव से साधक मन को संयमित करने की चेष्टा करता है। वैराग्य का अर्थ संसार तथा सांसारिक वस्तुओं तथा भोगों से घृणा का हो जाना है। यह वैराग्य भी सात्त्विक गुण के कारण ही आता है। वैसे नहीं आता है। संसार तथा सांसारिक वस्तुओं, भोगों की वास्तविकता, उनकी विनाशी प्रकृति की समझ सात्त्विक गुण के कारण प्रकट होती है। अनायास प्रकट नहीं होती है। इसे सात्त्विक गुण का ही कार्यरूप समझना चाहिए। इस प्रकार सात्त्विक गुण के प्रभाव से मनुष्य अपने मन को संयमित करने की चेष्टा करता है।

(सात) इन्द्रिय निग्रह का प्रयास :–

इन्द्रियों के पांच विषय हैं जिन्हें शब्द, रूप, रस, स्पर्श तथा गंध कहा जाता है। जैसे नाव में एक छिद्र हो जाने पर यदि उसमें जल भरना आरम्भ हो जाऐ तो धीरे–धीरे नाव स्वतः ही डूब जाती है। मनुष्य में उपरोक्त शब्द, रूप, रस, स्पर्श तथा गंध के अतिरिक्त कर्मेन्द्रियों के भी विषय हैं जो मनुष्य को संसाररूपी समुद्र में डुबों देते हैं। नाव में एक छिद्र होने से नाव डूब सकती है परन्तु मनुष्य में विषयरूपी यह पांच छिद्र हैं जिसमें सामान्य मनुष्य उनमें डूबा रहता है। आंखे सुन्दर मनोहारी और मनोरम दृश्य देखना चाहती है। कान मधुर संगीत और शब्द सुनना चाहते हैं। जिह्वा सुस्वादु भोजन का स्वाद लेने की इच्छुक होती है। त्वचा कोमल स्पर्श की आकांक्षा करती है और नासिका सुगन्धित द्रव्य में डूबना चाहती है। कर्मेन्द्रियों के भी उक्त पांच ही विषय हैं और कर्मेन्द्रियां भी अपने विषयों में डूबने की इच्छा रखती हैं। राजसी और तामसी पुरूषों में यह विषयों की प्रबलता का ज्ञान नहीं होता हैं और न ही वह विषयों के ज्ञान परिचित होना चाहते हैं। सात्त्विक गुण का प्रभाव जब मनुष्य पर आ जाता है तो वह अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय विषयों से हटाता है अर्थात् उनसे निग्रह करता है। इन्द्रियों का इन्द्रियअर्थो से हटा लेना ही इन्द्रियनिग्रह कहा जाता है,इसप्रकार सात्त्विक गुण की क्रियाशीलता से इन्द्रियनिग्रह का प्रयास होता है।

(आठ) तपश्चर्या की इच्छा :–

संसार मे प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति का प्रयास चलता रहता है। बिना प्रयास के कोई सफलता प्राप्त नहीं होती है। यहां तक कि संसार में जो कुछ भी प्राप्त होता है वह सबका सब प्रयास से ही प्राप्त होता है। हमारा जीवन भी, जीवन की आवश्यकताऐं भी चाहें वे अनिवार्य हों अथवा आवश्यक हों सबकी सब प्रयत्न से ही पूरी की जाती हैं। परमात्मा की प्राप्ति का जो प्रयास है उसे सामान्य रूप से तपश्चर्या समझना चाहिए। संसार की अनेक वस्तुऐं प्रयास से हमें हस्तगत होती हैं। वे वस्तुऐं तो व्यक्त स्वरूप में रहती हैं, परन्तु अव्यक्त परमात्मा एक मात्र तपश्चर्या से ही प्राप्त होता है। इतिहास का जब हम अध्ययन करते हैं तो अनेक कथाओं, प्रसंगों में तप का प्रकरण, विवरण हमें प्राप्त हो जाता है परमात्मा की प्राप्ति का प्रयास असंख्य लोगों द्वारा किया जाता है यह प्रयास तप कहलाता है। तप करने की इच्छा सात्त्विक गुण की प्रबलता से होती है। रजोगुण के प्रभाव से मनुष्य संसार की वस्तुऐं भोग प्राप्ति का प्रयास करता है। तमोगुण के प्रभाव से दुष्कर्मो की इच्छा करता है और सत्त्वगुण के प्रभाव से परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा स्वतः ही होती है। सत्त्व गुण के प्रभाव से मनुष्य जीवन की वास्तविकता को जान जाता है और उसे संसार से घृणा हो जाती है। संसार में अरूचि, घृणा से ही परमात्मा की ओर उन्मुखता होती है। साधक

परमात्मा की प्राप्ति का प्रयास करने लगता है। इसी को तपश्चर्या कहते है। तपश्चर्या की इच्छा सात्त्विक गुण का कार्यरूप है।

(नौ) विवेक का उदय :–

सामान्यतः मनुष्य को यह ज्ञान नहीं रहता है कि हमें क्या करना चाहिए? और क्या नहीं करना चाहिए? इस प्रकार का ज्ञान न होने को ही किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति कहते हैं। सामान्य मनुष्य को जब यह ज्ञान नहीं होता है कि उसे क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? तब वह मनमाने ढंग से अर्थात् स्वेच्छाचारिता से कर्म करता है। स्वेच्छाचारिता से किया गया कर्म अधिकांश रूप से शास्त्रों के प्रतिकूल होता है। वर्तमान में यही स्थिति है। मनुष्य अपने को योग्य, पढा लिखा, समझदार, ज्ञानी समझ कर अपनी बुद्धि से मनमाना आचरण कर रहा है। मनुष्य पर जब सत्त्व गुण का प्रभाव हो जाता है तो वह करने योग्य कर्तव्य कर्मो का आचरण आरम्भ करता है। किसी भी कर्म के आचरण के पूर्व उस पर विचार करना उसकी विशिष्टता हो जाती है। इसे विवेक का उदय होना कहा जाता है।

बुद्धि की शुद्ध विनिश्चयात्मक शक्ति जो कर्तव्य और अकर्तव्य का, कर्म और अकर्म का, धर्म और अधर्म का सही सही निश्चिय कर लेती है उसे विवेक कहा जाता है। मनुष्य में विवेक की उत्पत्ति अनायास नहीं होती है, वरन् सात्त्विक गुण के प्रभाव से होती है। तमोगुण से जब मनुष्य आवृत हो जाता है तो उसे कर्तव्य, अकर्तव्य, धर्म, अधर्म के आचरण में कोई लज्जा नहीं रहती है। ऐसा मनुष्य अधर्म को धर्म समझ कर तथा अकर्तव्य को अकर्तव्य समझ कर व्यवहार करता रहता है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक तथ्य का प्रतिकूल अर्थ निकालता है। प्रत्येक अर्थ का प्रतिकूल अर्थ निकालना तमोगुण के प्रभाव का प्रतीक है। रजोगुण के प्रभाव से मनुष्य कर्मासक्त होने के कारण अपने विवेक का उचित प्रयोग नहीं कर पाता है। सात्त्विक गुण का प्रभाव जब मनुष्य में बढ़ता है तब वह विवेकशील हो जाता है। इस प्रकार सात्त्विक गुणों के कार्य से मनुष्य में विवेक का उदय होता है।

(दस) सत्याचरण :–

मनुष्य का मन अनेक तथ्यों, विषयों के बारे में निरन्तर विचार किया करता है। मन जो कुछ भी विचार करता है बुद्धि उसे जानती है तथा उसका विनिश्चय भी करती रहती है। अधिकांशतः मन के साथ बुद्धि संलग्न रहती है। जैसे स्वच्छ जल में थोड़ी सी गंदगी आने पर वह हमें प्रतीत होती है। वैसे ही मन में कोई कुविचार आने पर बुद्धि उसे जान लेती है। इसी प्रकार बुद्धि यह भी जानती है कि सही क्या है? गलत क्या है ? शरीर पर

जब तम और रजगुण का प्रभाव रहता है तो यह सत्य और असत्य के परख की क्षमता समाप्त कर देता है और ऐसी स्थिति में बुद्धि सही सही विनिश्चय करने में असमर्थ हो जाती है। जब सही विनिश्चय नहीं होता है तो आचरण भी सही नहीं होता है। जब शरीर पर सात्त्विक गुण का प्रभाव आ जाता है तब मनुष्य की बुद्धि सत्य और असत्य का सम्यक् विनिश्चय कर लेती है और सत्य का आचरण करने का प्रयास भी करती है। सत्य और असत्य में अंतर करके सत्य को जानकर उसका आचरण करना ही सत्याचरण कहा जाता है और यह सत्याचरण सात्त्विक गुण के कारण ही होता है। इसलिए सत्य के आचरण को सात्त्विक गुण का कार्यरूप जानना चाहिए।

(ग्यारह) दयाभाव :–

गरीबों, असहायों, अनाथों, निर्धन और अपनों का अहित करने वालों के प्रति सहायता का भाव रखना तथा उनकी यथासंभव सहायता करना दयाभाव कहा जाता है। जब मनुष्य में सात्त्विक गुण का प्रादुर्भाव हो जाता है तब वह समस्त प्राणियों के प्रति अनायास ही दयालु हो जाता है। जैसे हम किसी गरीब मनुष्य को देखते हैं तो सामान्यतः उसकी उपेक्षा करते हैं। यह उपेक्षा रज और तमगुण के कारण और उसके प्रभाव से अनायास ही प्रकट हो जाता है। गरीबों की सहायता का भाव नहीं रहता है। इसके प्रतिकूल जब किसी गरीब को देखकर उसकी सहायता का भाव मन में आता है कि हम उसकी क्या सहायता करें, अधिक से अधिक सहायता करें तो यह भाव सात्त्विक गुण के कारण ही आता है। कोई मनुष्य किसी प्रकार असहाय है तो उसकी सहयता का भाव भी दयाभाव कहलाता है। यह सात्त्विक गुण के प्रभाव से ही उत्पन्न होता है। सात्त्विक गुण की प्रबलता जब होती है तो गरीब और असहाय मनुष्य को देखते ही मन सहज ही अनायास ही अपनी शक्ति से अधिक साहयता का भाव रहता है। उसके कष्ट को देखकर मन स्वतः ही द्रवित हो जाता है और हाथ सहायता के लिए उठ जाते हैं। यह भावना जब अनायास आती है तो इसे सात्त्विक गुण की प्रबलता समझना चाहिए और उसका प्रभाव मानना चाहिए। इस प्रकार दयाभाव भी सात्त्विक गुण का ही कार्यरूप है। सात्त्विक गुण के कारण ही उत्पन्न होता है।

(बारह) यदृच्छालाभसंतुष्टः :–

मनुष्य जीवन में अभाव की सर्वथा प्रतीति स्वतः ही हुआ करती है। यह मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। मनुष्य जहां भी है जैसी भी स्थिति में है जो भी है जैसे भी है उस सबमें उसे अभाव लगता है। तभी वह उस अभाव की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील भी रहता है। मनुष्य के जीवनपर्यंत न तो अभाव समाप्त होता है न ही उसकी प्रयत्नशीलता समाप्त होती है। एक अभाव की पूर्ति होते ही दूसरे अभाव की ओर दृष्टि जाती है। यह स्वाभाविक रूप

से रहता है। मनुष्य जीवन में असंख्य अभाव हैं, इस कारण सदैव अभाव रहता है। उसकी पूर्ति हो पाना असंभव है। यह रज और तमगुण के कारण अभाव की नई नई श्रृंखला बनती जाती हैं। नवीन कामनाओं की उत्पत्ति रजोगुण का लक्षण है और उनको शास्त्र प्रतिकूल कर्मो से प्राप्त करना तमोगुण का लक्षण है। आपने संभवतः ऐसे मनुष्यों को नहीं देखा होगा जो यह कहते हैं कि जहां हूं जैसा हूं जो भी हूं बिल्कुल ठीक हूं। अब हमें कुछ प्राप्त करना अवशेष नहीं है। जीवन में सब कुछ प्राप्त हो चुका है अब और अधिक मिलने की इच्छा नहीं है। सामान्य रूप से जब आप किसी से बात करते होंगे तो वह यही कहता है कि अभी अमुक कार्य करने हैं और जीवन भर मनुष्य में कार्यशीलता बनी रहती है।

मनुष्य जब सत्त्व गुण के अधीन हो जाता है तो उसमें अभाव की वृत्ति समाप्त हो जाती है। यही सात्त्विक गुण की विशेषतः है। सात्त्विक गुण के प्रभाव से मनुष्य शान्त और संतुष्ट हो जाता है। जो कुछ उसे प्राप्त है उसमें ही वह अति प्रसन्नता का आभास करता है और जो अप्राप्त है उसकी वह आकांक्षा नहीं करता है। जो मिल जाए वह खा लेता है और जहां रहने की व्यवस्था हो वहीं वह रूक जाता है और निश्िंचत होकर सो जाता है। इसी को यदृच्छालाभसंतुष्टः कहा जाता है। यह स्थिति सत्त्व गुण के कारण ही आती है। सत्त्वगुण की प्रबलता से मनुष्य संतुष्ट रहता है और किसी भी प्रकार की आकांक्षा नहीं करता है। इसलिए इसे सत्त्वगुण का कार्यरूप समझना चाहिए।

(तेरह) सांसारिक विषयों में उदासीनता का भाव :–

सांसारिक विषयों की असंख्यता है। विषयों की सही संख्या बता पाना असंभव है। इन्हीं असंख्य सांसारिक विषयों में मनुष्य जीवनपर्यन्त भ्रमण करता रहता है और उनसे शीघ्र निकल नहीं पाता है। परमात्मा ने मनुष्य में सांसारिक भोगों को भोगने की क्षमता उत्पन्न कर दी है और साथ ही संसार में विभिन्न भोग पदार्थ भी उत्पन्न कर दिए हैं। संसार के विभिन्न भोग, मनुष्य की भोग वृत्ति को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और वह इस आकर्षण में फंसा रहता है। अधिकतर मनुष्यों की ऐसी ही स्थिति है कि वह सांसारिक भोगों में फंसा हुआ अपने जीवन को विनिष्ट कर रहा है। मनुष्य सांसारिक भोगों में क्यों फंसा हुआ है? इसका उत्तर है कि उसमें क्षणिक सुख का आभास रहता है। इस क्षणिक सुख की प्रतीति में मनुष्य का जीवन व्यतीत हो जाता है। यह सुख भोग का आभास राजस और तामस गुणों के कारण विशेष रहता है। सात्त्विक गुण के प्रकटीकरण से तथा उसके प्रभाव से सांसारिक विषयों में उदासीनता का भाव आ जाता है। सांसारिक भोगों का संयोग होने पर भी उनमें प्रवृत्ति का न होना ही सांसारिक भोगों में उदासीनता है। गुण के प्रभाव से सांसारिक भोगों में अनिच्छा का भाव रहता है और वह प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार सांसारिक विषयों में उदासीनता सात्त्विक गुण का कार्यरूप है।

(चौदह) सात्त्विक गुण का विशिष्ट प्रभाव :–

सात्त्विक गुण का शरीर पर जब प्रभाव विशेष होता है तो शरीर में विशेष प्रकार की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अनावश्यक निद्रा का समापन, प्रमाद और आलस्य का विनाश इन्द्रियों में विशेष चैतन्यता, मन तथा बुद्धि में प्रकाश, उत्तम चिंतन, संसार तथा उसके भोगों में अनिच्छा, भोग वृत्ति प्रधान लोगों की संगति से घृणा, शान्तभाव, अनावश्यक बातचीत से बचाव, कार्य कुशलता, देवताओं, श्रेष्ठ पुरूषों, साधु संतों में श्रद्धा, सत्संग की प्रवृत्ति, शास्त्रों के अध्यापन में रूचि, मृदुभाषिता, सरल आचरण, लोगों की सहायता करने की वृत्ति, परमात्मा में अटूट श्रद्धा आदि उत्पन्न हो जाते हैं। सत्व गुण से शरीर जब प्रभावित होता है तो मनुष्य को साधना की विशेष इच्छा होती है और उसका उसे आभास होता है। इस प्रकार सात्त्विक गुण का विशेष प्रभाव आचरण और व्यवहार में भासता है और प्रतीत होता है।

(ख) रजोगुण की क्रियाशीलता से उत्पन्न वृत्तियां :–

मनुष्य जब रजोगुण के प्रभाव से आवृत हो जाता है अर्थात् उसमें रजोगुण की प्रबलता रहती है तो रजोगुण के कार्यरूप, अनेक वृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। रजोगुण बड़ा विशिष्ट गुण है कि वह मनुष्य को जीवन भर कामनाओं के महासमुद्र में गोते लगवाता है और मनुष्य उसमें डूबा हुआ जीवनपर्यन्त निकल नहीं पाता है। रजोगुण की वृत्तियां प्रमुखता से निम्न प्रकार की हैं।

(एक) अनन्त कामनाऐं :–

मनुष्य स्वभावतः रजोगुणी होता है। रजोगुण का प्रमुख कार्य कामनाओं की उत्पत्ति कर देना है। इन्द्रियां, मन तथा बुद्धि कामनाओं के वास स्थान कहे जाते हैं। अर्थात् कामनाऐं इन्द्रियों में, मन में तथा बुद्धि में रहती है। जैसे हम सब घर में रहते हैं। घर में रहने के पूर्व भी कहीं रहते हैं। वैसे ही कामनाऐं भी इन्द्रियां, मन तथा बुद्धि में वास करती है परन्तु वास करने के पूर्व भी कहीं से आती हैं? कहां से आती है ? और इन्द्रिय तथा मन बुद्धि में ठहर जाती हैं, रूक जाती हैं। इस पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि यह संसार जिसमें अंनन्त भोग वस्तुऐं हैं उन्हें इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि ग्रहण कर लेती हैं। इस प्रकार मनुष्य की इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि में अनन्त कामनाऐं आ जाती हैं। यह कामनाओं के आने की प्रक्रिया चला करती है। इसलिए भी अनन्त हो जाती हैं। कामनाऐं न तो इन्द्रियों में मन, बुद्धि में आना समाप्त करती हैं और न ही उनका किसी प्रकार अन्त होता है। यह सब रजोगुण के कारण ही होता है। इसप्रकार रजोगुण की क्रियाशीलता से अनन्त कामनाऐं मनुष्य में आ जाती हैं।

(दो) कामनाओं की पूर्ति का प्रयास :–

रजोगुण के कारण मनुष्य कामनाओं की पूर्ति का प्रयास करता है। कामनाओं की इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि में आ जाने पर उनकी पूर्ति का प्रयास मनुष्य स्वाभाविक रूप से करता है। जैसे हम किसी मिष्ठान की दुकान पर कोई सुस्वाद मिष्ठान देखे तो उसे खाने की इच्छा होती है। यह इच्छा दो कारणों से होती है। एक पूर्व में उस मिष्ठान को खाने के कारण उसके स्वाद की स्मृति संचित रहती है। दूसरे उसकी सुस्वादिता के बारे में सुनकर भी उसको खाने की इच्छा प्रकट हो जाती है। यह दोनों कारणों से हम मिष्ठान को खाना चाहते हैं, या खाने की कामना करते हैं। मिष्ठान को खाने की इच्छा जागृत होने पर हम उसे खाने के लिए उस दुकान के समीप जाते हैं तथा निर्धारित मूल्य देकर उसे ले लेते हैं और उसका उपभोग करते है। यदि वह मिष्ठान हमारी क्रय क्षमता से बाहर होता है तो हम धन की व्यवस्था करने का प्रयास करते हैं। यह सबका सब उपक्रम मिष्ठानरूपी कामना की पूर्ति हेतु ही होता है। इस प्रकार हम अपनी कामना की पूर्ति का प्रयास करते हैं।

उपरोक्त प्रकार से समस्त इन्द्रियों की पृथक्–पृथक् कामनाऐं है, जिनके उपभोग की इच्छा जागृत होने पर हम उनकी प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं। नेत्र के भोग की कामना पृथक् है। यह रूपरूपी गुण के अधीन रहती है। त्वचा की कामनाऐं पृथक् हैं वह स्पर्शरूपी गुण के अधीन रहती है। कर्ण और नासिका के भोगों की पृथक् कामनाऐं हैं। वह शब्द और गंध रूपी भोग के अधीन रहती हैं। इस प्रकार यह कामनाओं का संजाल बहुत विस्तृत है, जिनकी प्राप्ति का प्रयास मनुष्य जीवनपर्यन्त करता है। यह जो प्रयास है वह रजोगुण का कार्यरूप है। इस प्रकार रजोगुण के कारण ही कामनाओं की पूर्ति का प्रयास मनुष्य करता है। यदि हम किसी भी कामना की पूर्ति का प्रयास करते हैं तो वह प्रयास भी रजोगुण के कारण ही होता है। इस तथ्य को हमें स्पष्ट रूप से समझना चाहिए।

(तीन) भोग वृत्ति :–

मनुष्य में सांसारिक भोगों के प्रति उन्मुखता भी रजोगुण के कारण होती है। मनुष्य को भोगों में प्रियता का क्षणिक आभास होता है। संसार में प्रत्येक मनुष्य सुस्वाद भोजन खाना चाहता है। सुन्दर मनोराम दृश्य देखना चाहता है मधुर कर्ण प्रिय गीत आदि को सुनना चाहता है। कोमल स्पर्श का आकांक्षी होता है। सुगन्धादिक द्रव्यों की सुगन्ध चाहता है इन सबके प्रतिकूल कोई स्वादरहित भोजन नहीं चाहता है। वीभत्स, भयंकर दृश्यों को देखना नहीं चाहता है। बेसुरा संगीत सुनने की इच्छा नहीं रखता है। कठोर स्पर्श का आकांक्षी नहीं होता है। दुर्गन्ध से युक्त स्थान में रहने की इच्छा नहीं करता है। यह प्रवृत्ति साधारणतया रहती है। सांसारिक अनुकूलताओं को ग्रहण करने की इच्छा तथा सांसारिक

प्रतिकूलताओं से वियोग की इच्छा ही भोगवृत्ति कहलाती है। गर्मी के दिनों में ठंडी वस्तुओं का सेवन और ठंडे स्थान में रहने की इच्छा गर्म मौसम में ठंडे स्थान में रहने की आकांक्षा यह सबका सब भोगवृत्ति के कारण ही होता है।

रजोगुण की प्रबलता तथा प्रभाव से भोगवृत्ति का उदय हो जाता है। मनुष्य रजोगुण से प्रभावित होता है तो वह सांसारिक भोग सामग्री को एकत्र करने तथा उनके उपभोग की चेष्टा करता है। भोगों में प्रवृत्ति अनायास अथवा बिना कारण नहीं होती है। हम सब सामान्य रूप से यह तथ्य नहीं जानते हैं। जब हमारे मन में इस प्रकार के लक्षण प्रकट हो जाए तो हमें स्पष्ट जानना चाहिए कि हम रजोगुण के प्रभाव से आवृत हैं। इस प्रकार भोग वृत्ति भी रजोगुण के प्रभाव और उसकी क्रियाशीलता के कारण उत्पन्न हो जाती है। भोगवृत्ति का जब उदय हो जाए तो समझना चाहिए कि मनुष्य रजोगुण के प्रभाव से आच्छादित है।

(चार) अहंकार की उत्पत्ति :–

रजोगुण के प्रभाव से मनुष्य में एक विशेष प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह स्थिति तो सदैव उसके साथ रहती है परन्तु इसका उत्पन्न हो जाना विशिष्ट है। अहंकार भी रजोगुण का कार्यरूप है। अहंकार का पूर्ण लक्षण है सुख दुख की प्रतीति कराते रहना। हम सभी को अनुकूलताओं में जो सुख की प्रतीति तथा प्रतिकूलताओं में जो दुःख का आभास होता है उसका कारण अहंकार ही होता है। मनुष्य जो भी है जैसी स्थिति में है जिस पद और प्रतिष्ठा में जिस रूप स्वरूप में है। जैसा उसको अपना आभास हो रहा है। इस सब सांसारिक स्थिति का आभास अहंकार के कारण ही होता है। अहंकार बहुत ही सूक्ष्म तत्त्व है, जिसे साधारणतया देखा जा पाना, पहचाना जा पाना भी संभव नहीं है। सामान्य मनुष्य अहंकार से आवृत रहते हुए भी उसकी वास्तविकता से परिचित नहीं हो पाता है। जैसे हम स्नान आदि न किये हुए हों और हमें अपनी अस्वच्छता का आभास भी न हो तो इसे एक विशिष्ट स्थिति कहा जाएगा। इसी प्रकार अहंकार से आवृत होने के पश्चात् भी मनुष्य इसके बारे में जान नहीं पाता है। यह अहंकार का विशेष गुण है। मनुष्य में अहंकार की प्रवृत्ति रजोगुण के कारण होती है।

(पांच) संशय की उत्पत्ति :–

किसी विषय के सम्बंध में सम्यक्रूपेण सत्य का विनिश्चय न हो पाना ही संशय कहलाता है। संशय प्रमुख रूप से दो प्रकार का होता है, जिनसे शाखारूप अन्य प्रकार के संशयों की उत्पत्ति हो जाती है। एक जीवन के उद्देश्य के प्रति संशय रहना तथा दूसरे

अन्य उद्देश्यों के प्रति भी संशय रहना। जीवन के उद्देश्य के प्रति संशय रहना तो प्राथमिक संशय है, जिसका विनिश्चय रजोगुण के कारण नहीं हो पाता। जब जीवन के उद्देश्य का विनिश्चय नहीं हो पाता अर्थात् उसमें संशय रहता है तो जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति का संशय रहना भी अनिवार्य है। रजोगुण के प्रभाव से मनुष्य जीवन के उद्देश्य को निम्न प्रकार विनिश्चत करता है।

(क) जीवन का उद्देश्य धन की प्राप्ति कर लेना है तथा उसके संचय से भोगों का भोगना ही जीवन की उपलब्धि है।

(ख) जीवन का उद्देश्य सम्पत्ति की प्राप्ति है जिससे हम अनेक प्रकार की सम्पत्ति एकत्र कर लेंगे।

(ग) जीवन का उद्देश्य पद की प्राप्ति है जिससे हम असीमित अधिकारों का उपयोग कर सकेंगे और सुखपूर्वक रहेंगे।

(घ) जीवन का उद्देश्य प्रतिष्ठा की प्राप्ति है। जिससे हमारा समाज और संसार में बहुत सम्मान और आदर प्राप्त होगा।

(ङ) जीवन का उद्देश्य ऐश्वर्य की प्राप्ति है जिससे हम राजाओं के समान सुख भोग सकेंगे।

(च) जीवन का उद्देश्य सांसारिक ज्ञान का अर्जन है जिससे हम अनेक प्रकार की विधाओं से परिचित हो सकेंगें।

(छ) जीवन का उद्देश्य राजपद की प्राप्ति है जिससे हम पूर्ण वैभवयुक्त जीवन जीकर ऐश्वर्य से रहेंगे।

इसी प्रकार जीवन के अन्य उद्देश्यों से भी हम संशयपूर्वक अनेक प्रकार की भावनाओं को अंतःकरण में रखते हैं। अनेक प्रकार के संशय मनुष्य को अनेक प्रकार से भ्रमित करते हैं और यह समग्र संशय रजोगुण के कारण ही मनुष्य में उत्पन्न हो जाते हैं। जब मनुष्य में रजोगुण की प्रबलता हो जाती है तो उपर्युक्त प्रकार के संशयों का स्वाभाविक रूप से उदय होना अनिवार्य हो जाता है। विशेष रूप से सांसारिक स्थितियों, पदार्थो, वस्तुओं आदि के बारे में जो संशय होता है वह रजोगुण के कारण होता है क्योंकि सात्त्विक गुण की प्रबलता में जो संशय उत्पन्न होते हैं वे प्रमुखता आध्यात्मिक तथ्यों के बारे में होते हैं, जिनका विषय परमात्मा, जीवन, प्रकृति होता है। इसलिए मनुष्य जब अनेक प्रकार के संशयों से ग्रसित हो जाता है तब उसमें रजोगुण की प्रबलता हो जाती है।

(छः) अपने मत और सिद्धान्त को सही मानना :–

मनुष्य किसी स्तर का वह अपने मत को, सिद्धान्त को श्रेष्ठ तथा सही ठहराना चाहता है। जानकार हो, अज्ञानी हो, किसी विषय के बारे में विशिष्ट ज्ञान रखता हो अथवा न रखता हो फिर भी अधिकांश मनुष्यों में यह प्रवृत्ति रहती है। कि जो हम कहें वह सबका सब ठीक है। यह प्रवृत्ति रजोगुण के कारण होती है। यह प्रवृत्ति कम जानकार लोगों में अशिक्षित लोगों में भी पायी जाती है। पढ़े लिखे मनुष्यों में इस प्रवृत्ति के प्रति अधिक दुराग्रह रहता है। पढ़ा लिखा मनुष्य समाज के बारे में, आचरण के बारे में व्यवहार के बारे में ज्यादा ही जानकार हो जाता है। यह जानकारी का मिथ्या अनुमान भी अपने मत सिद्धान्त को उत्कृष्ट सिद्ध करने के लिए बाध्य करता है। हम कुछ मामलों में, अधिकांश विषयों में जानकार भी नहीं रहते हैं। अर्थात् हमारा ज्ञान अनेक विषयों में सीमित रहता है परन्तु फिर भी हम रजोगुण के कारण अपने सिद्धान्त तथा मत को दृढ़तापूर्वक सही सिद्ध करना चाहते हैं। यह सब रजोगुण की वृत्ति के कारण ही होता है। उसी को कभी–कभी हम हठवादिता भी कह देते हैं। हठ के कारण दुराग्रह के कारण भी हम अपने को सही समझते हैं तथा दूसरों को भ्रमपूर्ण और गलत समझते हैं। राजनीति में यह प्रायः देखा जाता है कि राजनीतिक महानुभाव आपस में दोषारोपण किया करते हैं। यह रजोगुण की वृत्ति है जिसके कारण हम अपने कथन को सही मानते हैं और दूसरों के मत को भ्रामक त्रुटिपूर्ण मानते हैं।

(सात) कीर्ति से स्नेह :–

रजोगुण प्रधान मनुष्यों में अपनी यशकीर्ति की इच्छा की प्रबलता रहती है। इसे रजोगुण का साक्षात् प्रभाव ही मानना चाहिए। रजोगुणी मनुष्य ऐसे कार्य का विचार करता है जिससे उसकी कीर्ति एवं यश बढ़े। समाज में लोग उससे परिचित हों। समाज सेवा के कार्य भी यशकीर्ति की दृष्टि को रखकर मनुष्य करता है। इसी को कीर्ति से स्नेह कहना कहा जाता है। गरीब लोगों की सहायता उनकी सेवा चिकित्सा की व्यवस्था, शिक्षा क्षेत्र में सहयोग जैसे कार्य भी अपनी यश कीर्ति के कारण करता है ताकि लोग उसे पहचाने। समाज में अपनी पृथक् पहचान के लिए, समाजसेवी कहलाने के लिए, समाज सेवा के जो कार्य होते हैं वे राजोगुण की प्रधानता एवं प्रभाव के कारण होते हैं। जब इस प्रकार की समाजसेवी कार्यो से लोग उसे जानते हैं, उसकी प्रशंसा करते है, तो उसे स्वतः ही प्रसन्नता की अनुभूति होती है और वह उसमें अनुकूलता का आभास करता है।

सकाम भावना से, फल की दृष्टि से जो कार्य होते हैं और उनसे जो कीर्ति यश प्राप्त होता है वह रजोगुण का कार्यरूप है। इस प्रकार की यशकीर्ति प्राप्त करने के लिए

मनुष्य को प्रयत्न करना पड़ता है। जब मनुष्य निष्काम भावना से बिना फल की याचना से तथा परिणाम के भाव को मन में न रखकर समाज सेवा के जो कार्य करता है उसमें उसकी कीर्ति एवं यश स्वतः ही फैलते हैं और यशकीर्ति के प्रचार प्रसार हेतु उसे प्रयत्न भी नहीं करना पड़ता है। इस प्रकार मन में यश और कीर्ति का भाव न रहें।

(आठ) सकाम देवोपासना– रजोगुण प्रधान मनुष्य देवी–देवताओं की उपासना अपनी संसारिक कामनाओं की पूर्ति हेतु करता है। यह रजोगुण का कार्यरूप है कि जो मनुष्य को सकाम देवी–देवताओं की उपासना हेतु प्रेरित करता है और बाध्य भी करता है। निष्काम भाव से फल की इच्छा का त्याग करके लोगों के हितार्थ कर्तव्य कर्म समझकर देवी–देवताओं कि जो उपासना की जाती है वह सात्त्विक देवोपासना होती है। संसार में जो संसारिक भोग हैं उनकी पूर्ति संसारिक पदार्थों से ही होती है। संसारिक भोग सामग्री के एकत्रीकरण का प्रयास मनुष्य रजोगुण के अधीन रहकर करता है। जब वह यह अनुभव करता है कि हमारी कामनाऐं अपूर्ण हैं और वे हमारे प्रयास से पूरी हो पाना संभव नहीं हैं अथवा हमारा प्रयास वहां तक नहीं पहुंच रहा है तो वह देवी–देवताओं की उपासना करने का संकल्प लेता है और यथाविधि श्रद्धानुसार देवी–देवताओं की उपासना भी करता है। इस प्रकार जब हम संसारिक भोग वस्तुओं की प्राप्ति की कामना से देवी–देवताओं की उपासना करते हैं तो वह सकाम देवोपासना कहलाती है तथा यह रजोगुण का कार्यरूप है।

(नौ) तृष्णा की उत्पत्ति– संसारिक विषय भोगों के भोगने की इच्छा को तृष्णा कहते हैं जैसे भूख प्यास एक तृष्णा होती है। भूख की क्षणिक निवृत्ति भोजन से हो जाती है और प्यास की क्षणिक निवृत्ति जल से हो जाती है परंतु कुछ काल के पश्चात भूख–प्यास पुनः उत्पन्न होती है। इस कारण भूख और प्यास एक प्रकार की तृष्णा ही है। संसारिक भोगों की तृष्णा भी कुछ इसी प्रकार होती है तथा हम संसारिक भोग चाहते और भोगते हैं पर उनका पूर्ण निवारण नहीं होता है। इसका एक कारण तृष्णा ही है। रजोगुण के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है और यह राजसी गुण का कार्यरूप है। रजोगुण की प्रमुख वृत्तियों का उसके कार्यरूप का वर्णन उपरोक्त प्रकार से हुआ इसके अतिरिक्त भी रजोगुण के कार्य का विस्तार है जो हमे विभिन्न प्रकार से प्रतीत होता है। इस संदर्भ में कुछ विशिष्ट तथ्य निम्नांकित प्रकार से प्रस्तुत किए जा रहे हैं। जैसे–

1– अनेक प्रकार की इच्छाओं और अकांक्षाओं का स्वतः ही उत्पन्न हो जाना और उन आकांक्षाओं का जीवनपर्यंत बने रहना, ये राजसी गुण का कार्यरूप है।

2– संसारिक वस्तुओं के प्राप्त हो जाने पर उनके अस्तित्त्व का मिथ्या आभास होना जबकि संसारिक वस्तुऐं कुछ समय के लिए हमारे संपर्क में आती हैं, इसलिए रजोगुण हमें क्षणिक वस्तुओं का मिथ्याभास कराता है।

3– हास्यभाव की उत्पत्ति रजोगुण का कार्यरूप है जो हास्यभाव सांसारिक क्रियाकलापों को देखकर और उनका अनुभव करके होता है, उसे रजोगुण का कार्यरूप मानना चाहिए।

4– रजोगुण के कार्य से और उसके प्रभाव से मनुष्य में विशेष रूप से असंख्य कामनाओं की उत्पत्ति हो जाती है जिससे अन्य अवगुणों का प्रादुर्भाव होना स्वतः और स्वाभाविक होता है, जो कामनाओं के कारण ही होता है।

(ग) तमोगुण की क्रियाशीलता से उत्पन्न वृत्तियां–

तमोगुण की क्रियाशीलता से मनुष्य में प्रमुख रूप से जिन वृत्तियों का उदय हो जाता है, वे मनुष्य के शरीर पर स्पष्ट रूप से प्रतीत होती हैं। उनका स्पष्ट दर्शन मनुष्य के क्रियाकलापों को देखकर किया जाता है। तमोगुण के प्रभाव से प्रमुख रूप से निम्न वृत्तियां सहज ही प्रकट हो जाती हैं। प्रमुख वृत्तियों का विवरण निम्न प्रकार है।

(एक) लोभ– तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य में असीमित लोभ की उत्पत्ति हो जाती है। इस कारण लोभ को तमोगुण का कार्यरूप कहा जाता है। मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ भी एकत्र कर पाता है उससे वह संतुष्ट नहीं होता है और भविष्य में हो भी नहीं सकता है। जब तक संतोषरूपी गुण मनुष्य में नहीं आता है तब तक उसे और अधिक पाने की इच्छा रहती है। इस इच्छा के कारण जो आकर्षक वस्तु उसे प्रतीत होती है वह उसे पाना चाहता है। यह वृत्ति ही लोभ कहलाती है। लोभ की वृत्ति रजोगुण के कारण होती है और वह तमोगुण का कार्यरूप है क्योंकि रजोगुण से और अधिक पाने की इच्छा उत्पन्न होती है और तमोगुण से जो कुछ पाया जाता है उसमें संतुष्टि का अभाव रहता है।

(दो) क्रोध– क्रोध की उत्पत्ति राजसी गुण के कारण होती है, परंतु उसका परिणाम तमोगुणी है। इस कारण क्रोध को तमोगुण का कार्यरूप मानना चाहिए। मनुष्य में सामान्य रूप से अनेक प्रकार की कामनाऐं उत्पन्न हो जाती हैं। यह एक सामान्य तथ्य है। जब मनुष्य कामनाऐं करता है तो उसकी पूर्ति का भी प्रयास करता है और उन्हें पाने का प्रयत्न चलता रहता है। इस प्रयत्न की पूर्ति में जब कोई बाधा आती है तो क्रोध की स्वतः उत्पत्ति हो जाती है। कामना में पूर्ति की बाधा के कारण क्रोध की उत्पत्ति होती है। यह सिद्धांत और नियम है। इसी कारण क्रोध को रजोगुण से उत्पन्न माना जाता है। मनुष्य जो प्रतिक्रिया व्यक्त करता है वो भी तमोगुण का ही कार्यरूप है और तमोगुण के द्वारा उत्पन्न भाव है।

(तीन) हिंसा वृत्ति– मनुष्य में जो दूसरों को प्रताड़ित करने, मारने–पीटने, कष्ट पहुंचाने या हत्या का प्रयास करने अथवा हत्या करने की जो वृत्ति है वो हिंसा वृत्ति कही जाती

है। ये वृत्ति जब मन में उत्पन्न होती है तब मनुष्य निश्चित तमोगुण के अधीन रहता है। हिंसा के भाव का मन में आना किसी को कष्ट पहुंचाने का प्रयास करना यह सब तमोगुण का ही कार्यरूप है। बहुत विचार करने पर यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि हमारे अंतःकरण में जो दूसरों के अहित करने की भावना उत्पन्न हो जाती है वह तमोगुण के ही कारण उत्पन्न होती है इसलिए हमें दूसरों के अहित की भावना का परित्याग करना चाहिए, क्योंकि हिंसा वृत्ति मनुष्य के पतन का कारण होती है।

(चार) कर्म विहीनता– जब मनुष्य में तमोगुण का प्रभाव बढ़ता है तो वह अनावश्यक निद्रा, आलस्य तथा प्रमाद के वशीभूत हो जाता है। सामान्य निद्रा के अतिरिक्त निद्रा का समय–समय पर आना, कर्तव्य कर्मों का समय से आचरण न करना, आवश्यक नित्य कर्म करने की इच्छा भी न करना तथा प्रमाद के वशीभूत होकर अपने जीविकोपार्जन के लिए भी कर्मो का न करना कर्म विहीनता कही जाती है। कर्म विहीनता तमोगुण का ही कार्यरूप मानी जाती है, इसलिए यदि मनुष्य में आवश्यक और अनिवार्य कर्म करने की इच्छा का भी अभाव हो जाए तो वह निश्चितरूपेण तमोगुण के अधीन हो जाता है। इसलिए कर्मविहीनता को तमोगुण का कार्यरूप माना जाता है।

(पांच) याचक भाव– तमोगुण से आवृत मनुष्य आर्थिक रूप से चाहें जितना संपन्न हो जाए उसमें दूसरों से सहायता प्राप्त करने का भाव रहता है। यह भाव समाप्त नहीं होता है। जब मनुष्य में प्रत्येक प्रकार से याचना का भाव प्रबल हो अर्थात् कुछ न कुछ मांगने का भाव आ जाए तो यह भाव तमोगुण के कारण उत्पन्न होता है। यह वृत्ति अभाव का निरंतर आभास करवाती रहती है। याचक भाव वैसे तो रजोगुण के कारण उत्पन्न होता है परंतु यदि इसमें प्रबलता आ जाए तो उसे तमोगुण का कार्यरूप मानना चाहिए। जैसे जीवन में आपने बहुत से संपन्न पुरुषों को देखा होगा। वे अन्य व्यक्तियों से कुछ न कुछ याचना किया करते हैं। आवश्यकता न होने पर भी प्रार्थना करना और अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह करना तथा कृपणता से जीवन यापन करना भी याचक भाव का ही पर्याय है।

(छह) अनावश्यक श्रम– कभी–कभी तमोगुण से प्रभावित लोग अनावश्यक श्रम करते रहते हैं। जिस श्रम का कोई अर्थ नहीं होता और न ही उससे कोई विशेष लाभ होता है उसे किया जाना ही अनावश्यक श्रम कहा जाता है। तमोगुण के कारण बुद्धि की स्वच्छ कार्यशक्ति विवेक का अभाव हो जाता है और यह अभाव होने पर कर्तव्य कर्म का सही–सही विनिश्चय मनुष्य कर नहीं पाता है। इस कारण जो कार्य उसे नहीं करना चाहिए वो करता है और जो कार्य करना चाहिए वह नहीं करता है। इस प्रकार अनावश्यक कार्यो के संपादन से अनावश्यक श्रम हो जाता है। यह अनावश्यक श्रम तमोगुण का कार्यरूप मानना चाहिए।

(सात) कलह का भाव– मनुष्य में कलह का भाव रहता है और वह स्वतः ही उत्पन्न होता है। दूसरे मनुष्यों से, परिवार में संपर्कित लोगों से सगे–संबंधियों से अकारण ही द्वेष करना तथा उसे प्रकट करना ही कलह कहा जाता है। जब मनुष्य में तमोगुण की प्रबलता होती है तो वह मनुष्य तमोगुण के कारण अन्य लोगों से ईर्ष्या करता है और बात–बात पर बिना कारण के अनावश्यक विवाद करता रहता है। यह कलह का भाव तमोगुण का विशेष कार्यरूप है, क्योंकि इसमें मोह और याचना तथा कामनाऐं असीमित रूप से बढ़ जाती हैं। कलह का प्रमुख कारण अपने अधिकार की वस्तुओं को तो अपने अधिकार में रखना तथा दूसरों के अधिकार की वस्तुओं को भी अपने अधिकार में रखने का प्रयास करना है।

(आठ) शोक– शोक के भाव का उदय प्रतिकूलता के कारण होता है, परंतु अधिकांशतः छोटे–छोटे कारणों से शोक के भाव का रहना तथा मन में छोटी सी प्रतिकूलता भी आने पर दुख की उत्पत्ति हो जाना तमोगुण के कारण होता है। यह शोक का भाव तमोगुण का विशेष कार्यरूप है। शोक रहता है तो मन में उदिग्नता रहती है और मनुष्य मन से दुखी रहता है तथा निराशा के भाव को व्यक्त करता है। इस प्रकार शोक तमोगुण की वृत्ति है और उसका कार्यरूप है। दुख के आने पर शोक की उत्पत्ति होती है और दुख का कारण अपने संपर्कित व्यक्तियों, वस्तुओं का वियोग होना अथवा उनकी आशंका होना होता है।

(नौ) पाखंड– तमोगुण का विशिष्ट अवगुण पाखंड भी है। सत्य के प्रतिकूल जो आचरण होता है वह सब का सब पाखंड की श्रेणी में आता है। जब मनुष्य तमोगुण से आवृत हो जाता है तब वह असंभव कार्य को भी संभव करने का दिखावा करता है। किसी भी कारण से जो दिखावे का कार्य होता है वह सब का सब पाखंड ही है। पूजा पाठ की विधि को न जानकर पूजा पाठ के संपादन का कार्य, लोगों को उनकी मनोकामना पूर्ति हेतु पाखंड करना अथवा अन्य कार्य हेतु असत्य का आचरण करना ये सब का सब पाखंड की श्रेणी में आता है। पाखंड को तमोगुण का कार्यरूप मानना चाहिए और वही उसकी उत्पत्ति का हेतु है।

उपरोक्त वृत्तियों के अतिरिक्त भी तमोगुण के कारण अनेक प्रकार की वृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें मोह, वास्तविकता के प्रतिकूल आचरण करना, किसी भी कारण प्रतिकूलता देखकर दुखी हो जाना तथा अपने और अपने संपर्कित लोगों के अनिष्ट की आशंका रखना और अनिष्ट की आशंका के कारण भयभीत रहना आदि–आदि गुण भी तमोगुण के कारण ही उत्पन्न होते हैं और प्रकट हो जाते हैं। वर्तमान समय में तमोगुण का प्रभाव विशेष है, इस कारण तमोगुण प्रधान लोगों की बहुलता है। समाज में तमोगुण का स्पष्ट और विशेष प्रभाव प्रतीत हो रहा है।

सत, रज, तम गुणों का विशिष्ट कार्य ही संसार में दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रकट हो रहा है, प्रत्यक्ष हो रहा है, व्यक्त हो रहा है। अन्य कुछ भी नहीं है। अर्थात सभी कुछ त्रिगुणमयी है। सात्त्विक गुणों के प्रभाव से सात्त्विक वृत्तियां उपजती हैं तथा रजोगुण के प्रभाव से राजसी वृत्तियों का उदय अनायास ही हो जाता है। इसी प्रकार तमोगुण के प्रभाव से तमोगुण की वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। इस तथ्य को संक्षेप में समझना चाहिए। एक वृत्ति से अनेक वृत्तियां भी उत्पन्न हो जाती हैं क्योंकि गुणों का वृहद् कार्यरूप प्रतीत होता है। साधक मनुष्य गुणों के इस कार्यरूप को तथा उसके प्रभाव का आभास करता है। सामान्य मनुष्य इसका आभास न करके उसमें संलिप्त रहता है। गुणों के कार्यरूप का प्रभाव जान पाना इतना सहज नहीं है और इसके स्वरूप को समझना भी दुर्लभ है।

(5) त्रिगुणों का मिश्रित स्वरूप :–

सत्त्व, रज, तम यह त्रिगुण हैं परन्तु दो गुणों के मिल जाने पर इनका मिश्रित स्वरूप प्रकट हो जाता है और उससे मिश्रित गुण प्रकट होते हैं। इन मिश्रित गुणों को सत्त्व, रज, मिश्रित, रज तम मिश्रित, सत तम मिश्रित गुण कहा जाता है। मिश्रित गुणों का पृथक्–पृथक् प्रभाव शरीर पर प्रकट होता रहता है। जब दो गुणों का प्रभाव मिश्रित रूप से प्रतीत हो तो यह समझना चाहिए कि मनुष्य पर मिश्रित गुणों का प्रभाव है। मिश्रित गुणों के प्रभाव के सम्बंध में वर्णन निम्न प्रकार है।

(क) सत्त्व, रज, मिश्रित स्वरूप :–

सत्त्व और रज गुण की वृत्तियां मिश्रित रूप में जब प्रतीत होती हैं तब वह मनुष्य सत्त्व, रज, गुण के मिश्रित स्वभाव से प्रभावित रहता है। जैसे मनुष्य में देवताओं की उपासना की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाए परन्तु उसमें नैतिक कामनाऐं प्रकट होती है तो इसे सत्त्व रज का मिश्रित प्रभाव माना जाता है। इस प्रकार सत्त्व गुण की जिन वृत्तियों का पूर्वोक्त प्रकार से वर्णन हुआ है और रजोगुण की जिन वृत्तियों का भी वर्णन हो चुका है। जब दोनों वृत्तियां मनुष्य में सम्मिलित रूप से प्रतीत होती हैं तो इसको सत्त्व, रज मिश्रित गुण का प्रभाव कहा जाता है। सात्त्विक गुण में निर्मलता, निर्विकारिता तथा प्रकाश होता है और रजोगुण में तृष्णा और आसक्ति होती है। जब मनुष्य में यह पांचों गुण प्रकट हो जावे तो उसे सत्त्व, रज, मिश्रित गुण का प्रभाव कहा जाएगा। सत्त्वगुण में जब सांसारिक कामनाओं की इच्छा उत्पन्न हो जाती है तब सात्त्विक गुण अपने में रज को मिला लेता है अनेक साधु संतों, प्रबुद्ध ज्ञानीजनों में सत्त्व रज मिश्रित गुण पाया जाता है, जिसके कारण वे परमात्मा की ओर पूरी तरह से उन्मुख नहीं हो पाते। शरीर में सुखभोग की इच्छा

सात्त्विक मनुष्य को राजसी बना देती है। कामनाओं का पूर्ण परित्याग जब हो जाता है तो इसको सत्त्व गुण की प्रबलता मानना चाहिए और जब तक कामनाएं रहती हैं तब तक सत्त्व गुण के प्रबल रहने पर भी सत्त्व रज मिश्रित स्थिति मानी जाती है। इस प्रकार मिश्रित गुणों का भी प्रभाव मनुष्य के शरीर पर स्पष्ट रूप से देखा जाता है। यदि हम किसी आध्यात्मिक कार्य से धन सम्पत्ति, पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य प्राप्त करने का प्रयास करें तो यह प्रयास सत्त्व रज, तम मिश्रित गुण के कारण होता है।

(ख) सत्त्व, तम मिश्रित गुण :–

मनुष्य में जब सात्त्विक गुण की वृत्तियों के साथ–साथ दुष्कर्मिता भी प्रकट हो जाती है तो मनुष्य को सत्त्व तम मिश्रित गुणों के प्रभाव के अधीन मानना चाहिए। यह दो कारणों से होता है यह तो सत्त्व गुण रहने पर दुष्कर्मिता की ओर किसी कारण उन्मुख हुआ जावे अथवा तमोगुण के कार्यरूप दुष्कर्मिता में रहने पर किसी कारण से भगवान की भक्ति आ जावे और सत्त्वगुण तब प्रकट होने लगे। श्री भगवान ऐसे लोगों के लिए ही कहते हैं कि यदि कोई पापी मनुष्य मेरा भक्त है तो वह भी साधु मानने योग्य है, क्योंकि पापी तथा साधु दो प्रतिकूल प्रकार के मनुष्य हैं। पापी की वृत्ति तमोगुणी है तथा साधु की वृत्ति सतो गुणी है। यह दोनों ही वृत्तियां जब मिल जाती हैं तब सत्त्व तम मिश्रित गुण प्रकट हो जाता है। वर्तमान समाज में ऐसे लेागों की संख्या कम नहीं है जो सत्त्व गुण से आवृत रहते हैं तथा परिस्थिति, वातावरण, संगति, अज्ञानता, बाध्यता, लोलुपता आदि के कारण दुष्कर्म की ओर स्वतः प्रवृत्त हो जाते हैं यह प्रवृत्ति ही मनुष्य सत्त्व तम मिश्रित गुण की उत्पत्ति कर देती है।

कई कारणों से मनुष्य सात्त्विक होता है। उसकी प्रवृत्ति सात्त्विक होती है और ऐसी स्थिति में उसका व्यवहार सात्त्विक हो जाता है। आचरण में पूर्ण सात्त्विकता रहती है, परन्तु भोगों की प्रबलता से और तामसी माया के प्रभाव से मनुष्य तमोगुणी हो सकता है। यह दोनों ही गुण सत्त्व तम का मिश्रित स्वरूप प्रकट कर देते हैं। सत्त्व तम गुण का मिश्रित स्वरूप जब प्रकट होता है तो मनुष्य की स्थिति पतन की ओर उन्मुख हो जाती है। यदि वह सचेत न हुआ तो उसमें समय के साथ धीरे–धीरे सत्त्व गुण का ह्रास होने लगता है और उसमें सत्त्व गुण की वृत्तियां धीरे–धीरे विलुप्त हो जाती हैं। इस कारण सात्त्विक प्रधान पुरूषों को अपने आचरण के प्रति सचेत और सजग रहना चाहिए। मनुष्य को सांसारिक विषय भोग और आकर्षण ही पतन की ओर ले जाते हैं इसलिए उनसे सजग रहकर मनुष्य को निरन्तर सत्त्व गुण की वृत्तियों का सेवन करना यथेष्ट है। इस प्रकार सत्त्व और तमगुणों का मिश्रित प्रभाव जिस मनुष्य में प्रतीत हो तो ऐसा मानना चाहिए कि

वह सत्त्व तम मिश्रित गुण से प्रभावित हो रहा है। यह प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रकट और प्रत्यक्ष हो जाता है।

(ग) रज तम मिश्रित स्वरूप :–

संसार में तमोगुण प्रधान पुरूषों की संख्या सर्वाधिक है। इसी कारण अधिकांश लोग इस संसार में अज्ञानी हैं और उन्हें इसी कारण सत्य असत्य का, कर्तव्य अकर्तव्य का, धर्म अधर्म का, नैतिकता अनैकिता का, सही सही ज्ञान नहीं है। सही सही ज्ञान न होने के कारण उनका उक्त तथ्यों के प्रति सही सही विनिश्चय भी नहीं हो पाता है और उनकी प्रवृत्ति दुष्कर्मो की ओर स्वतः हो जाती है। दुष्कर्मी मनुष्यों की संख्या अधिक होने के कारण भी उनका वर्चस्व नहीं है, क्योंकि उनमें बुद्धि की कमी रहती है। तमोगुण स्वभाव के लोगों के पश्चात् रज तम मिश्रित स्वभाव के लोगों की संख्या है। रज तम मिश्रित स्वभाव के लोग कामनाओं की पूर्ति हेतु दुष्कर्म करते रहते हैं और उसी में लिप्त रहते हैं। यह उनकी विशिष्ट प्रकृति होती है। कामनाओं का उदय करना रजोगुण का मुख्य लक्षण है और वे कामनाऐं किसी प्रकार से अनैतिक रूप से पूरी हो यह तमोगुण का विशिष्ट लक्षण है। रज तम मिलकर यही कार्य करते हैं कि मनुष्य जो कामनाऐं करता है उनको अनैतिक रूप से पूरा करने का प्रयास भी करता है। रजोगुण मनुष्य में कामनाओं का संजाल फैलाता है और तमोगुण उस संजाल की पूर्ति हेतु अनेक प्रकार के अनैतिक कर्मो का सम्पादन करवाता है। इसप्रकार रज और तम गुणों के मिश्रित स्वरूप का प्रकटीकरण मनुष्य में देखा जाता है।

रज तम मिश्रित गुण वाले मनुष्यों में सत्त्वगुण का अभाव होता है अथवा हो जाता है। सत्त्वगुण प्रधान भी जब अपने श्रेय साधन को त्यागता है तो वह रजोगुण से आवृत होकर तमोगुणी हो जाता है। यह गुणों की स्थिति क्रमशः गिरती जाती है। जैसे ही गुणों की स्थिति में परिवर्तन होता जाता हैं। वैसे ही मनुष्य की वृत्तियां परिवर्तित होती जाती हैं। सत्त्वगुण प्रधान मनुष्य सात्त्विक गुणों की वृत्तियों को धारण करता है और पतन में रजो गुण ग्रहण करने पर राजसी व्यक्तियों के अधीन हो जाता है तथा ऐसी स्थिति में रज तम मिश्रित गुण प्रतीत होता है और वह रज तम मिश्रित वृत्तियों से आवृत हो जाता है। इसी प्रकार तीनों मिश्रित गुण मिश्रित रूप से शरीर में प्रभाव रखते हैं तथा अपने प्रभाव को प्रकट करते रहते हैं। जो साधक मनुष्य है वह सत्त्व रज तथा सत्त्व तम एवं रज तम मिश्रित गुणों के प्रभाव को पृथक्–पृथक् जानते हैं और समस्त गुणों का त्याग करके सत्त्व गुण में निरन्तर स्थित होना चाहते हैं। इस प्रकार गुणों का मिश्रित प्रभाव भी अनेक मनुष्यों में व्यवहार में देखा जाता है।

(6) त्रिगुणों के विकास के कारण : –

त्रिगुण मनुष्य शरीर में कैसे विकसित होते हैं? इनके विकास के क्या कारण हैं? इस पर विचार करना भी परम आवश्यक है। प्रत्येक कार्य का कारण अवश्य होता है। इस कारण मानव शरीर में त्रिगुण के विकास के कारण हैं। कथन का अभिप्राय यह है कि किसी मनुष्य में सात्त्विक गुण का विकास कैसे हो जाता है? किसी मनुष्य के शरीर में रजो गुण और तमोगुण कैसे सक्रिय हो जाता है? यह कौन से कारण हैं? जिनके कारण मनुष्य में पृथक्–पृथक् रूप से गुणों का विकास होता है। यह कारण प्रमुख रूप से 15 हैं तथा अन्य भी हो सकते हैं। त्रिगुणों के विकास के जो 15 कारण हैं उनका उल्लेख इस स्थल पर किया जा रहा है ताकि यह जाना जा सके कि त्रिगुण कैसे विकसित होते हैं?

(एक) पूर्व जन्म के संस्कार :–

मनुष्य की जब मृत्यु होती है तो उसकी पृथक्–पृथक् गतियां हैं। तमोगुण की प्रधानता में जब मनुष्य की मृत्यु होती है तो उसकी दो गतियां हैं। एक तो वह कीट–पशु, पक्षी आदि तिर्यक् योनियों में तत्काल जन्म ग्रहण कर लेता है अथवा नरकों में जाकर अनेक प्रकार की यातनाऐं भुगतता है। इसके साथ ही रजोगुण में मृत्यु को प्राप्त होने वाला मनुष्य पुनः इसी मृत्युलोक में जन्म प्राप्त करता है अर्थात् पुनः वह मनुष्य बन जाता है। सात्त्विक गुण की अधिकता में मरने वाला मनुष्य स्वर्गादिक लोकों में जाता है जहां से पुण्यों के क्षीण होने पर उसका पुनः मनुष्यलोक में उदय होता है। इस प्रकार पूर्व में जो जन्म रहा है उस जन्म के संस्कार रहते हैं। वे संस्कार ही मनुष्य में गुणों की प्रधानता उत्पन्न कर देते हैं। मनीषीजन यह भी कहते हैं कि चित्त में संस्कार रहते हैं। वैसे यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि संस्कार कहां रहते हैं? परन्तु संस्कार जो पूर्व जन्म से सम्बंधित हैं वह मनुष्य के साथ अवश्य रहते हैं। यह निश्चित है।

इस प्रकार पूर्व में मनुष्य जो भी रहा है और जैसी स्थिति में रहा है तो उसके संस्कार मनुष्य के साथ रहते हैं। जैसे एक बीज में पौधा छिपा होता है अथवा विशाल वृक्ष भी छिपा होता है, वैसे ही मनुष्य में पूर्वजन्मों के संस्कार बीजरूप से छिपे रहते हैं। पूर्व जन्म में मृत्यु के समय मनुष्य जिस गुण से प्रभावित रहता है उस गुण का प्रभाव इस जन्म में भी देखा जा सकता है। साथ ही पूर्वजन्म में मनुष्य मुख्यतः जिस गुण से प्रभावित रहता है वह गुण मनुष्य में अवश्य रहता है और उससे ही उसके पूर्वजन्म की स्थिति का अनुमान लगाया जाता है। पूर्व जन्म के संस्कार के आधार पर इस जन्म में भी गुणों का प्रभाव देखा जाता है। स्पष्ट तथ्य यह है कि यदि मनुष्य सात्त्विक गुण से पूर्व जन्म में प्रभावित रहा है

तो वह इस जन्म में भी प्रभावित रहेगा। इसी प्रकार तम और रज गुण से जो मनुष्य पूर्व जन्म में प्रभावित रहा है वह इस जन्म में भी प्रभावित रहेगा। इसी तथ्य को स्पष्ट रूप से यह कहा जाता है कि पूर्वजन्म के संस्कार मनुष्य के साथ रहते हैं, अर्थात् वे समाप्त नहीं होते हैं। इसलिए त्रिगुणों के विकास का जो पहला कारण है, पहला आधार है वह पूर्व जन्मों के संस्कार के रूप में हमारे समक्ष है।

(दो) माता पिता की प्रवृत्ति :–

एक बालक पर माता पिता की प्रवृत्ति का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। चूंकि प्रत्येक मनुष्य का जन्म माता पिता के संयोग से ही होता है। इस कारण बच्चे पर माता पिता की प्रवृत्ति का प्रभाव देखा जाता है। माता पिता यदि एक ही गुण से प्रभावित और आवृत्त होते हैं तो उस पर एक ही गुण का प्रभाव देखने को मिलता है। यदि माता पृथक् गुण से प्रभावित है और पिता पृथक् गुण से प्रभावित हैं तो दोनों का मिश्रित प्रभाव बालक पर देखा जा सकता है। जैसे माता क्रोधी है तो बालक पर क्रोधरूपी रजोगुण का प्रभाव स्पष्ट रूप से आपको प्रतीत होगा। वैसे ही पिता सात्त्विक है तो बालक पर सत्त्व गुण की वृत्तियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से रहता है और बालक रज और सत मिश्रित गुणों के प्रभाव में कार्य करता है।

बालक की माता पिता की प्रकृति का पहले अध्ययन करें और उसका मिलान यदि बच्चे की प्रवृत्ति से करें तो उसमें सम्मिलित प्रकृति स्पष्ट रूप से बालक में प्रतीत होती है। माता शान्त है तो बालक भी शान्त रहेगा। पिता उग्र है तो बालक भी उग्र स्वभाव का प्रतीत होगा। इस प्रकार शान्ति तथा उग्रता का सम्मिलित स्वरूप बालक में प्रकट हो जाएगा। प्रतिकूल प्रवृत्ति के साथ ही यदि माता पिता की प्रवृत्ति शान्त है तो बालक पर भी उस प्रवृत्ति का स्पष्ट और व्यापक प्रभाव रहता है। इस कारण बालक भी शान्त रहेगा। यह दोहरी प्रवृत्ति के कारण ही होता हैं और एक जैसी प्रवृत्ति के कारण भी होता है। इस प्रकार गुणों की प्रतिकूल और अनुकूल स्थितियां माता पिता के कारण बालक में प्रतीत होती है। इस प्रकार माता पिता की प्रवृत्ति के कारण भी मनुष्य में गुणों का ह्रास और विकास स्वाभाविक रूप से होता रहता है।

(तीन) जन्म स्थान :–

संसार में अनेक देश हैं। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी अपनी संस्कृति, धर्म, सभ्यता, रीति रिवाज है। संस्कृति धर्म, सभ्यता आज की नहीं है, वह प्राचीनकाल से चली आ रही है। जो राष्ट्र जिस धर्म का पालन करता है उस राष्ट्र के निवासी भी अधिकांशतः उस धर्म का

पालन करते हैं। उसमें जो भी निर्देश और मान्यताऐं होती हैं उनका पालन करना अभीष्ट होता है। कई धर्मो ने मांस सेवन को धर्मसंगत कहा है तो उनके अनुयायी मांस खाते हैं और इसे धर्मसंगत मानते हैं। मांस की व्यवस्था के लिए हमें जीवों की हत्या करनी पड़ती है, इसलिए जीवों की हत्या को तर्कसंगत कहा जाता है। परन्तु वैदिक धर्म के मानने वालों में अर्थात् हमारे राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति में मांस का सेवन अधार्मिक कृत्य है और जो मांस का सेवन करता है वह शास्त्र के प्रतिकूल कार्य करता है। एक तो मांस का सेवन करना शास्त्र के प्रतिकूल है और दूसरे जीव हत्या भी घोर पाप है। इस कारण दो धर्मो की मान्यताओं में प्रतिकूलता है।

मांस का सेवन तामसी वृत्ति का परिणाम माना जाता है। मांस का सेवन न करने से तामसी वृत्ति का स्वतः ही क्षय हो जाता है और सात्त्विक वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार यदि हमारा जन्म उस स्थान पर हुआ जहां पर मांस सेवन को वैधानिक और धर्मसंगत मान्यता है तो हम अनायास ही जन्म स्थान के कारण मांस का सेवन करके तमोगुणी हो जाते हैं और तामसी वृत्ति के अधीन हो जाते हैं। हम यदि उस स्थान पर उत्पन्न होते हैं जहां पर मांस सेवन वर्जित है तो हमें वह जन्म स्थान में सात्त्विकता प्राप्त होती है। इस प्रकार जन्म स्थान भी हमारे गुणों के विकास का कारण होता है। जैसी गतिविधियां हमारे जन्म स्थान में होती है वैसा वैसा आचरण मनुष्य स्वतः करने लगता है। जैसे एक स्थान पर यज्ञादिक हवन, सत्संग और आध्यात्मिक कर्मो का सम्पादन होता है तो मनुष्य में स्वतः ही अध्यात्म के प्रति एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है और उसका सत्त्वगुण विकसित होने लगता है। इस प्रकार जन्म स्थान भी हमारे गुणों के ह्रास और वृद्धि में सहायक होता है।

(चार) निवास :–

मनुष्य जिस स्थान पर निवास करता है उस स्थान के वातावरण को देखकर भी उसके गुणों में ह्रास और वृद्धि अनायास हो जाती है। मदिरालय के निकट रहने पर वहां की प्रतिदिन की गतिविधि को देखकर मनुष्य बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकता है। अर्थात् मदिरालय की स्थिति का और उसके वातावरण का प्रभाव निश्चितरूप से मनुष्य पर पड़ता है। इसी प्रकार जिस स्थान पर मनुष्य का निवास हो उस उस स्थान पर सत्त्व गुण की प्रधानता हो तो मनुष्य में निश्चित ही सत्त्व गुण की वृद्धि होने लगती है। जिस स्थान पर मंदिर हो, गंगा जी का तट हो, साधु संतों का आश्रय हो उस स्थान पर सात्त्विक गुणों की प्रधानता होती है। उस स्थान के निकट निवास करने से मन में स्वतः ही पूजा पाठ करने, गंगा स्नान करने तथा सत्संग की प्रवृत्ति का उदय हो जाता है। इस प्रकार निवास स्थान

का मनुष्य के गुणों के विकास में आधारभूत स्थान है। मनुष्य को यदि सत्त्वगुण का विकास करना है तो उसे अपने निवास स्थान को सत्त्व प्रधान वातावरण में निर्मित करना चाहिए।

(पांच) वातावरण :–

जिस प्रकार के वातावरण में मनुष्य रहता है उसका स्पष्ट प्रभाव उस पर पड़ता है। तामसी प्रधान वातावरण में रहने पर तमोगुण का विकास होगा। राजसी प्रधान वातावरण में रहने पर रजोगुण का विकास होगा। इसी प्रकार सात्त्विक गुण प्रधान वातावरण में रहने पर सात्त्विक गुण का प्रभाव स्वतः ही हो जाता है। जिस स्थान पर सत्संग हो रहा होता है और यदि उस वातावरण में मनुष्य पहुंच जाता है, रहता है तो उस पर भी वातावरण का अर्थात् सत्संग का प्रभाव तत्काल पडता है और ऐसे वातावरण में तत्काल ही सात्त्विक गुण की वृद्धि होती देखी जाती है। जिस स्थान पर नृत्य आदि हो रहा हो। यदि मनुष्य उस स्थान पर जाता है तो नृत्य प्रधान वातावरण के संयोग में आ जाने पर तत्काल रजोगुण की वृद्धि हो जाती है। यह गुणों की वृद्धि, उसके प्रभाव का तत्काल उद्‌भव वातावरण के आधार पर होता है। चाहें वह क्षणिक ही हो। जैसे हम टेलीविजन पर कोई नृत्य आदि देखते है तो वहां का वातावरण रजोगुणी प्रधान हो जाता है और इसी वातावरण का प्रभाव मनुष्य पर तत्काल पड़ता है। इसी प्रकार तमोगुण प्रधान वातावरण में तमोगुण का प्रभाव होता है। इस स्थान पर मदिरा आदि की बिक्री, नशीले पदार्थो का सेवन, जुंआ आदि होता है उस स्थान पर उस वातावरण में रहने पर रहने से तमोगुण की वृद्धि तत्काल हो जाती है। इस प्रकार वातावरण के आधार पर भी मनुष्य में गुणों का ह्रास और क्षय देखा जाता है। इसलिए यदि हमें सत्त्व गुण का विकास करना है तो रज और तम गुणों से आच्छादित वातावरण से हमें निश्चित रूप से बचना चाहिए।

(छः) अध्ययन :–

वर्तमान में इस संसार में अनेक और असंख्य विषय हैं और उन अनेक विषयों पर असंख्य पुस्तकें भी हैं। हम जब किसी पुस्तकालय में जाते हैं तो वहां पर पुस्तकों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि असंख्य विषय हैं और उन पर अनेक पुस्तकें भी उपलब्ध हैं। पुस्तकों को भी विषयानुसार हम तीन भागों में बांट सकते हैं। सात्त्विक गुण प्रधान पुस्तकें, राजसी गुण प्रधान पुस्तकें और तामसी गुण प्रधान पुस्तकें। सात्त्विक गुण प्रधान पुस्तकों का लेखन जितना भारतवर्ष में हुआ उतना विश्व में कहीं नहीं हुआ। भारत वर्ष के अतिरिक्त अन्य देशों में भी दार्शनिक विचारक, चिंतक हुए परन्तु जैसे भारत वर्ष में दार्शनिक चिंतन विचारक और मनीषी हुए हैं वैसे अन्यत्र विश्व में कहीं नहीं हुऐ। भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही अनेक आध्यात्मिक विषयों का चिंतन हुआ है। परमात्मा क्या है ? जीव

क्या है? सृष्टि की रचना कैसे हुई है? सृष्टि का निर्माण कौन करता है ? और यह कैसे निर्मित हो जाती है ? जीवों की उत्पत्ति, उनका भरण पोषण कौन करता है ? आदि आदि प्रश्नों पर अनुभवपरख चिंतन हुआ है। इस कारण भारतवर्ष में अध्यात्मिक ग्रंथों की बहुलता है। कर्म, सांख्य, भक्ति, ध्यान आदि विषयों के अतिरिक्त चिकित्सा, ज्योतिष, भाषा, दर्शन, तंत्र मंत्र आदि विषयों पर भी भारतवर्ष में बहुत शोध हुआ है और उन ग्रंथों की रचना भी हुई है। अध्यात्मिक विषयों पर विश्व के अन्य देशों में भी ग्रंथ लिखे गए हैं परन्तु उनके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश ग्रंथ प्राथमिक स्तर के ग्रंथ हैं उनका वैसा महत्व नहीं जैसा भारतीय अध्यात्मिक विषयों का महत्व है।

अध्यात्म से सम्बंधित विषयों का अध्ययन जब मनुष्य करता है तो उसमें सात्त्विक गुणों का विकास स्वतः ही हो जाता हैं क्योंकि आध्यात्मिक विषयों में सत्य को जानने और उसको परखने तथा प्राप्त करने के उपायों का निरूपण किया गया है। इस कारण आध्यात्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से सत्त्वगुण स्वतः ही विकसित हो जाता है। सासांरिक विषयों के अध्ययन से संसार को जाना जाता है तथा संसार को प्राप्त करने का प्रयास रहता है। संसार की वस्तु और विषय प्राप्त होते हैं वह सबका सब अध्ययन राजसी अध्ययन कहा जाता है। ऐसी पुस्तकों के अध्ययन से रजोगुण का विकास स्वतः हो जाता है। इसी प्रकार जिन ग्रंथों के अध्ययन से भोगवृत्ति विषयों में दृढ़ और निकृष्ट इच्छा ओर विकृत कामनाऐं तथा उनकी प्राप्ति के अनेक नैतिक उपायों की चर्चा हो तो ऐसे पुस्तकों के अध्ययन से तमोगुण का स्वतः ही विकास हो जाता है। तमोगुण प्रधान पुस्तकों के अध्ययन से मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है और परिणामतः उसे अनेक प्रकार के नरकों की प्राप्ति होती है अथवा उसे कीट पशु–पक्षी आदि योनियों में भ्रमण करना पड़ता है। इस प्रकार सात्त्विक विषयों के अध्ययन से सात्त्विक गुण की वृद्धि होती है। तमोगुणी विषयों के अध्ययन से तमोगुण की वृद्धि होती है तथा सात्त्विक गुण से युक्त आध्यात्मिक पुस्तकों के अध्ययन से सत्त्वगुण की वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार हम जो भी अध्ययन करते हैं उसी प्रकार के गुण हमारे अंतःकरण में स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। हमारा जैसा भी अध्ययन रहता है वह ही गुणों के विकास और क्षय का मूल माना जाता है।

(सात) भोजन :–

भोजन भी गुणों के विकास का महत्वपूर्ण आधार है। भोजन तीन प्रकार का होता है जिसे सात्त्विक, राजस, तथा तामस भोजन कहा जाता है। सात्त्विक भोजन से सात्त्विक गुण की वृद्धि स्वतः हो जाती है। राजसी भोजन से राजसी गुण की वृद्धि होती है और तामसी भोजन से तामसी गुण अपने आप बढ़ जाता है। वस्तुतः मानव जीवन में भोजन का विशेष

महत्व है। हम जैसा भी भोजन करते हैं उसका पूर्ण प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। हमारे शरीर के आंतरिक अंग, बाह्य क्रियाऐं भोजन से प्रभावित होते हैं। गुणों की वृद्धि और क्षय भी भोजन के आधार पर हो जाता है। शास्त्रों में तीन प्रकार के भोजन का वर्णन किया गया है। इन तीन प्रकार के भोजन का पृथक्–पृथक् अवलोकन कीजिए–

(क) सात्त्विक भोजन :–

सात्त्विक भोजन में विशिष्ट गुण होते हैं। जिस भोजन से मनुष्य की आयु बढ़ती है। उस भोजन को सात्त्विक कहा जाता है। मनुष्य की आयु तो वैसे निश्चित है परन्तु यदि मनुष्य सात्त्विक भोजन करता है तो उसकी आयु में वृद्धि हो सकती है। सात्त्विक गुण की अनायास वृद्धि भी सात्त्विक भोजन से होती है इसके अतिरिक्त बल, शक्ति, सामर्थ्य की वृद्धि स्वतः ही शरीर में सात्त्विक भोजन के उपरान्त शरीर में होती देखी जाती है। शरीर मे निरोगता रहती है। रोगों का विनाश स्वतः ही हो जाता है, जिससे मन में प्रसन्नता और सुख अनायास ही बढ़ता है। सात्त्विक भोजन के ग्रहण करने से सुख का आभास होता है। यह भोजन स्थिर रहता है, दिखता है तथा हमारे हृदय को शक्ति प्रदान करता है। इससे शरीर में स्फूर्ति रहती है। सात्त्विक भोजन रसयुक्त और चिकना होता है।

(ख) राजसी भोजन :–

राजसी भोजन को ग्रहण करने से रजोगुण की वृद्धि अनायास हो जाती है। राजसी भोजन के प्रकार को जानने के लिए हमें यह ज्ञान होना चाहिए कि राजसी भोजन किस प्रकार का होता है। राजसी भोजन अत्यंत कडुवा, खट्टा, नमकीन, गर्म और रूखा होता है। इस प्रकार का भोजन जब हम करते हैं तो रजोगुण की वृद्धि अनायास हो जाती है।

(ग) तामसी भोजन :–

तामसी भोजन का उल्लेख भी शास्त्रों में किया गया है। जिस भोजन में दुर्गन्ध हो, रस का अभाव हो, गंध आती हो और अधपका हुआ हो, झूठा हो, उस भोजन को तामसी भोजन कहा जाता है। नशीले पदार्थो को भी तामसी भोजन का एकरूप ही मानना चाहिए। इस प्रकार तामसी भोजन को ग्रहण करने मनुष्य में तमोगुण की वृद्धि स्वतः ही और अनायास हो जाती है। इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है।

(आठ) स्मरण :–

मनुष्य प्रातः से रात्रि तक अनेक विषयों का स्मरण करता है। यह स्मरण किस प्रकार होता है ? यह विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि पूर्व की घटनाऐं जो स्मृति में संचित रहती हैं उस सम्बंध में भी हमारा चिंतन हुआ करता है। हमारा सम्पूर्ण अतीत अर्थात्

बीता हुआ काल स्मृति में संचित रहता है। एकत्रित रहता है। हम जब अपनी स्मृति को खोलते हैं तो पूर्व की घटनाऐं हमारे समक्ष प्रकट होने लगती हैं। स्मृति में विशेष प्रकार की घटनाऐं विशेष प्रकार से संचित रहती हैं और वे शीघ्र ही हमारे स्मरण में आ जाती हैं। सामान्य घटनाऐं विशेष प्रकार से संचित नहीं रहती है। वे सामान्य रूप से हमारे समक्ष अस्पष्ट स्वरूप में प्रकट होती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण घटनाऐं संचित रहकर आवश्यकतानुसार, परिस्थिति अनुसार चाहें जाने पर प्रकट होती है। मन में उनका प्रकटीकरण होता है तथा बुद्धि के द्वारा उनका विनिश्चय भी होता है।

जो घटनाऐं सत्त्वगुण प्रधान हैं उनके स्मरण में आने पर सत्त्वगुण की वृद्धि हो जाती है। जैसे किसी तीर्थयात्रा विशेष या मंदिर विशेष में दर्शन, पूजन, यजन आदि होता है तो वे घटनाऐं सतोगुण सम्बंधित हैं। उनके स्मरण में आने पर सतोगुण की वृद्धि स्वतः हो जाती है। ऐसे किसी विशेष अवसर और उससे सम्बंधित भोगों का संचय हमारी स्मृति में रहता है तो उन स्मृति में संचित घटनाओं का स्मरण हो जाने पर हमारे शरीर में रजोगुण की वृद्धि हो जाती है। जो घटनाऐं तामसी हैं वे हमारे स्मरण में भी आती हैं। हमारे द्वारा पूर्व में जो दुष्कर्म और हिंसा आदि कर्म किये गए हैं वे भी हमारी स्मृति में संचित रहते हैं। इस प्रकार अनेक विधियों से हमारे स्मृति में जो कुछ भी संचित है वह मन और बुद्धि के सहयोग से बार बार प्रकट हुआ करता है। इसी को सामान्य भाषा में स्मरण कहा जाता है। स्मृति में संचित घटनाओं में तथा वर्तमान में घटित घटनाओं के विषय में हम जो जो स्मरण करते हैं उस उस स्मरण के कारण भी मनुष्य में उन गुणों की उत्पत्ति हो जाती है जिसे सम्बंधित वे घटनाऐं हैं।

(नौ) काल :–

काल गणना के अनुसार भारतीय मनीषियों ने चार युगों का उल्लेख किया है। जिन्हें सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलयुग कहते हैं। इन चारो युगों को मिलाकर एक चतुर्युगी होती है। प्रत्येक युग की काल सीमा का निर्धारण हमारे भारतीय मनुष्यों ने पूर्व किया था। जिसके अनुसार कलयुग 4 लाख 32 हजार वर्ष का होता है। द्वापर 8 लाख 64 हजार वर्ष का होता है। त्रेतायुग 12 लाख 96 हजार वर्ष का होता है तथा सतयुग 17 लाख 28 हजार वर्ष का होता है। इस प्रकार एक चतुर्युगी 43 लाख 20 हजार वर्ष की होती है। सतयुग में जो पुरूष होते हैं उनमें सत्त्वगुण की प्रधानता होती है। इस काल में रज और तमगुणों से प्रभावित पुरूष नहीं होते हैं। त्रेतायुग में भी सत्त्वगुण प्रधानता में रहता है। त्रेतायुग में रज और तम भी गौण स्थिति में रहते हैं। द्वापर युग में रजोगुण की प्रधानता होती है। तमोगुण भी अपना प्रभाव दिखाता है। इसी प्रकार कलयुग में तमोगुण की प्रधानता

हो जाती है। इसलिए तमोगुणी पुरूषों का प्रधानता से होना पाया जाता है। रजोगुणी पुरूष गौण हो जाते हैं ओर सत्त्वगुणी पुरूष अल्पमात्रा में रह जाते हैं। इस प्रकार काल के अनुसार भी गुणों में वृद्धि हुआ करती है। कलयुग में तमोगुण का प्रभाव प्रमुख रहता है। इसलिए इसे तमोगुण प्रभाव वाला काल मानते हैं। इस कारण तमोगुणी मनुष्य अधिकाधिक मात्रा में रहते हैं और वे श्रीभगवान के यजन पूजन में बाधाऐं उत्पन्न करते हैं। काल के प्रभाव से कलयुगी मनुष्यों का मन रज और तमगुण की ओर स्वतः ही भागता रहता है। इस प्रकार गुणों की वृद्धि में काल भी महत्वपूर्ण तथ्य है।

(10) श्रद्धा :–

गुणों की वृद्धि का एक प्रमुख आधार श्रद्धा भी है। श्रद्धा त्रिगुणात्मक होती है अर्थात् तीन प्रकार की होती है, जिसे सात्त्विक, राजस, तामस कहा जाता है। श्रद्धा अंतःकरण में रहने वाला एक भाव है जिसके आधार पर मनुष्य यजन पूजन में विश्वास रखता है। आपने समाज में विभिन्न प्रकार की उपासना विधि का अवलोकन किया होगा। यह सब उपासना विधि मनुष्य की श्रद्धा के आधार पर ही होती है। सात्त्विक श्रद्धा से आवृत लोग देवी देवताओं का यजन पूजन करते हैं। देवी देवताओं का यजन पूजन सकाम भावना से हो अथवा निष्काम भावना से हो वह सात्त्विक श्रद्धा के द्वारा ही होता है। राजसी श्रद्धा से आवृत लोग यक्ष और राक्षसों की पूजा करते हैं। यक्ष और राक्षस भी देवसृष्टि का एक अंग होते हैं। राजसी श्रद्धा के लोग रजोगुण से प्रभावित होकर यक्ष राक्षसों को पूजते हैं। इसी प्रकार तामसी श्रद्धा के लोग भूत प्रेतों की उपासना करते हैं। यह तीन प्रकार की श्रद्धा के आधार पर मनुष्य में गुणों की वृद्धि हो जाती है। यहां पर एक तथ्य और विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि मनुष्य में श्रद्धा भी गुणों के आधार पर विकसित होती है। अर्थात् श्रद्धा के विकास का मूल कारण गुण ही है, परन्तु जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही गुण भी विकसित होता है।

(11) संगति :–

मनुष्य जिस प्रकार की संगति अर्थात् साथ करता है उस संगति और साथ का भी उसके जीवन पर, उसकी क्रियाविधि पर उसके व्यवहार और आचरण पर बहुत प्रभाव रहता है। एक सात्त्विक विचारधारा का पुरूष यदि तमोगुण की प्रधानता वाले मनुष्य के साथ रहता है तो उस तमोगुणी मनुष्य का प्रभाव सात्त्विक गुण प्रधान वाले मनुष्य पर पड़ने लगता है और उसमें सत्त्वगुण का ह्रास होता है तथा तमोगुण की वृद्धि स्वतः ही होने लगती है। इसी प्रकार यदि तमोगुण का पुरूष सात्त्विक विचारधारा के पुरूष के साथ

संगति कर लेता है तो उसमें सात्त्विक गुणों का विकास हो जाता है और वह भगवान की पूजा उपासना करने लगता है। सात्त्विक गुण प्रधान मनुष्य यदि राजसी गुणों से प्रभावित और आवृत मनुष्य की संगति कर लेता है तो उसमें कामनाओं स्वतः ही उत्पत्ति हो जाती है और कामनाओं की पूर्ति हेतु उद्वत हो जाता है। इस प्रकार संगति के प्रभाव से ही गुणों में वुद्धि होने लगती है।

जैसे स्वच्छ जल होता है, उसमें थोड़ी सी गंदगी मिलने पर मिली हुई गंदगी अपना प्रभाव छोड़ती है और जल को गंदा कर देती है। गंदगी जितनी अधिक मात्रा में मिलती है उतनी ही अधिक मात्रा में जल गंदा होता जाता है। यह गंदगी रजोगुण तथा तमोगुण तत्त्व के रूप में देखना चाहिए। सत्त्वगुण रूपी जल में यही रज और तमगुण रूपी गंदगी मिलकर सत्त्वगुण को भी गंदा करने का प्रयास करते हैं। संगत और किसी व्यक्ति का साथ भी ऐसे ही मनुष्य पर प्रभाव छोड़ता है। प्रत्येक मनुष्य गुणयुक्त है, गुणमय है और उसमें किसी न किसी गुण की प्रधानता रहती है। संगति से गुणों की प्रधानता में पारस्परिक परिवर्तन हुआ करता है। एक मनुष्य के गुण दूसरे को प्रभावित करते हैं विशेषकर तो मनुष्य की प्रवृत्ति अधोमुखी है अर्थात् नीचे की ओर अधिक है, पर साथ और संगत के प्रभाव से वह भी ऊपर भी उठ सकता है। अर्थात् तमोगुणी मनुष्य सतोगुणी हो सकता है तथा संगत के प्रभाव से सतोगुणी मनुष्य पतन की ओर जाकर तमोगुणी हो सकता है।

(बारह) वार्तालाप :–

त्रिगुणों की शरीर में वृद्धि होने के कारणों में एक कारण वार्तालाप भी विशिष्ट कारण है। जैसे हम रजोगुणी मनुष्यों के सम्पर्क में रहते हैं तब रजोगुणी मनुष्य विभिन्न प्रकार की कामनाओं, सांसारिक विषयों तथा ज्ञान प्राप्ति के प्रयत्नों पर बातचीत करता है। यह बातचीत हमारे मन में संचित होती है और हम भी उससे प्रभावित होकर वैसा ही विचार करते हैं तथा सांसारिक कामनाओं के विचारण के उपरान्त उनकी प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार सात्त्विक प्रधान पुरूष के सम्पर्क में आने पर सात्त्विक वार्तालाप होता है और कई प्रकार से सात्त्विक विषयों के बारे में ज्ञान हो जाता है। सात्त्विक वार्तालाप से मनुष्य के मन में सात्त्विक भावों का अनायास ही उदय हो जाता है। वैसे ही तमोगुणी मनुष्य के सम्बंध से हमें हिंसा आदि, दुष्कर्म, दुराचार के बारे में वार्तालाप करते हैं और उस वार्तालाप का जो विषय होता है उसका प्रभाव हमारे अंतःकरण पर पडता है। चूंकि मनुष्य का मन बहुत संवेदनशील होता है और विशेषकर तमोगुणी वार्तालाप को शीघ्र ही ग्रहण करके उस पर विचार करने लगता है और उस विचार को क्रियान्वित करने का प्रयास भी

करता है। इस प्रकार हम जो भी वार्तालाप करते हैं और उस वार्तालाप का जो भी विषय होता है। उस विषय से हम प्रभावित होते हैं और उस पर विचार भी करते हैं। इस कारण वार्तालाप भी हमारे गुणों की वृद्धि में एक महत्वपूर्ण तथ्य है।

(तेरह) चिंतन :–

गुणों की वृद्धि के एक कारण स्मरण का वर्णन उपरोक्त प्रकार से हो चुका है। स्मरण तथा चिंतन में अंतर है। स्मरण में स्मृति में संचित विषयों, घटनाओं के बारे में विचार होता हैं अर्थात् पूर्व की अतीत की जो घटनाऐं संचित हैं उनके बारे में जो स्मृति रहती है वे घटना एवं परिस्थितियों के कारण हमारे स्मरण में आ जाती हैं। चिंतन में उन घटनाओं के बारे में विचारण तो हो ही सकता है नवीन तथ्यों के बारे में विचार चलता है। चिंतन चित्त की वृत्ति है, जब हमारा चित्त किसी विषय विशेष के बारे में चिंतन करता है तो जो विषय चिंतन किया जाता है उसका जो गुण होता है उससे हम प्रभावित हो जाते हैं। सात्त्विक विषयों के चिंतन से सात्त्विक गुण का विकास होता है। रजोगुणी विषयों के चिंतन से रजोगुण का विकास होता है और तमोगुणी विषयो चिंतन से तमोगुण का स्वतः और स्वाभाविक रूप से विकास होता है। किसी भी विषय के चिंतन में दो प्रक्रियाऐं प्रमुख रूप से होती हैं। एक तो मन अनेक विषयों के बारे में विचार करता है और बुद्धि उन समस्त विषयों में विचार करके उनका विनिश्चय कर देती है। इस प्रकार चिंतन की दो प्रमुख क्रियाऐं हैं जिन्हें विचारण और विनिश्चय कहा जाता है। यह दोनों क्रियाऐं जिस गुण से सम्बंधित होती हैं उस गुण का मनुष्य में विकास हो जाता है।

(चौदह) उपासना विधि :–

पूर्व में यह कहा जा चुका है कि सात्त्विक मनुष्य देवी देवताओं का यजन पूजन करते हैं। राजसी मनुष्य यक्ष और राक्षसों का पूजन करते हैं तथा तामसी पुरूष भूत प्रेतों की उपासना करते हैं। देवी देवताओं की पूजा उपासना विधिपूर्वक की जाती है तो वह सात्त्विक उपासना की विधि है तथा यक्ष राक्षसों की पूजा उपासना भी विधिपूर्वक होती है वह उपासना विधि राजसी है। इसके अतिरिक्त भूतप्रेतों की उपासना विधिपूर्वक होती है तो वह भी उपासना विधि तामसी है। उपासना विधि का सम्बंध मनुष्य की श्रद्धा से होता है। मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुसार ही उपासना विधि का चयन स्वयं कर लेता है। सात्त्विक विचारधारा के लोग देवी देवताओं का यजन पूजन सकाम भाव से करते हैं। उनकी सात्त्विकता निम्न स्तर की होती है। परमात्मा का यजन पूजन जब निष्काम भाव से होता है तो उसकी सात्त्विकता श्रेष्ठ होती है। यक्षों की उपासना धन आदि सांसारिक वस्तुओं और

स्थितियों को प्राप्त करने के लिए की जाती है। राजसी उपासना भी अनेक प्रकार की सांसारिक स्थितियों को अपने अनुकूल बनाने हेतु की जाती है तथा तांत्रिक उपासनाऐं अर्थात् भूत प्रेतों की उपासनाऐं किसी के अहित के भाव से की जाती हैं। इस प्रकार उपासना विधि से भी मनुष्य में गुणों की वृद्धि और ह्रास होता है।

(पंद्रह) प्रवृत्ति :–

मनुष्य साधारणतया तीन प्रकार प्रवृत्ति के होते हैं। एक सात्त्विक प्रवृत्ति के, राजसी प्रवृत्ति के तथा तामसी प्रवृत्ति के। सात्त्विक प्रकृति के मनुष्यों में सात्त्विक गुणों की प्रधानता होती है। राजसी प्रकृति के मनुष्यों में राजसी गुणों की प्रधानता होती है और तामसी प्रकृति के मनुष्यों में तमोगुण की प्रधानता होती है। सात्त्विक प्रकृति के लोगों के व्यवहार, बातचीत, आचरण से ही उनकी प्रकृति का अनुमान लगाया जाता है। राजसी प्रकृति के लोगों की सांसारिकता की बातें सुनकर उनकी प्रवृत्ति का सहज अनुमान हो जाता है और तामसी प्रवृत्ति के लोगों के दुराचरण के व्यवहार से ही तामसी प्रवृत्ति का सहज अनुमान लगाया जाता है। इस प्रकार प्रवृत्ति से भी गुणों का विकास होता है। अर्थात् जो मनुष्य जिस प्रकार की प्रवृत्ति का होता है उसमें उसी प्रकार की प्रवृत्ति का विकास उसके आचरण से हुआ करता है। प्रवृत्ति भी मनुष्य के गुणों की वृद्धि और ह्रास में प्रमुख भूमिका निभाती है।

उपरोक्त प्रकार से मनुष्य शरीर में गुणों की विकास की प्रक्रिया है। यदि हम सात्त्विक गुणों का विकास करना चाहते हैं तो हमें अपनी प्रवृत्ति, उपासना विधि, चिंतन, वार्तालाप, संगत, श्रद्धा, स्मरण, निवास स्थान, वातावरण, आदि आदि सभी कुछ सात्त्विक करना पड़ेगा। इस स्थल पर यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि हम जिस गुण का विकास करना चाहें तो वह प्रयत्न से हो सकता है। रज और तम गुणों के विकास के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। जैसे ऊपर जाने के लिए अर्थात् पहाड़ आदि पर चढ़ने के लिए हमें प्रयास करना पड़ता है, परन्तु नीचे जाने के लिए हमें विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार सत्त्व गुण के विकास के लिए हमें प्रयास करना पड़ता है और रज और तम गुण के विकास के लिए हमें प्रयास नहीं करना पड़ता। मनुष्य वास्तविक रूप से रज रूपी धरातल पर टिका रहता है। उसे ऊपर जाने के लिए अर्थात् सत्त्व गुण की वृद्धि हेतु प्रयत्न करना पड़ता है, परन्तु तमोगुण की वृद्धि के लिए उसे प्रयत्न नहीं करना पड़ता क्योंकि तमोगुण का धरातल नीचे की ओर है। इसलिए यदि हमें सत्त्वगुण का विकास करना है तो हमें प्रयास करना पड़ता है। परन्तु तमोगुण की वृद्धि के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। वह स्वतः ही विकसित हो जाता है।

(7) त्रिगुणों की विशेष वृत्तियां :–

सत्त्व रज तम त्रिगुणों की विशिष्ट वृत्तियों की संख्या 11 है। सात्त्विक गुणों की दो विशिष्ट वृत्तियां, रजोगुण की पांच वृत्तियां हैं और तमोगुण की चार विशिष्ट वृत्तियां हैं। इस प्रकार त्रिगुणों की कुल 11 वृत्तियां हो जाती हैं। मानव शरीर इन 11 वृत्तियों के अधीन ही रहता है, इनसे पृथक् नहीं जा पाता है। इस तथ्य का अभिप्राय यह है कि मानव शरीर से 11 प्रकार के कार्य प्रकट होते हैं, जो गुण प्रमुखता से मानव शरीर में प्रभावी होता है उस गुण की वृत्तियां मानव शरीर में प्रकट हो जाती हैं। प्रत्येक गुण की पृथक्–पृथक् वृत्तियों का आप अवलोकन कीजिए।

(क) सत्त्व गुण की दो विशेष वृत्तियां :–

सत्त्व गुण की दो विशेष वृत्तियां हैं जिन्हें प्रकाश एवं ज्ञान कहा जाता है। प्रकाश एवं ज्ञान का प्रकटीकरण सत्त्वगुण के कारण ही होता है। इसलिए इसे सत्त्वगुण का कार्य रूप मानना चाहिए। इन दोनों वृत्तियां का विवरण निम्न प्रकार है–

(एक) प्रकाश वृत्ति :–

मनुष्य की इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि में विशिष्ट प्रकाश का उत्पन्न होना सत्त्वगुण के प्रकटीकरण का लक्षण हैं। जिन करणों के माध्यम से मनुष्य कार्य करता है उनकी संख्या 13 है, जिनका उल्लेख पूर्वोक्त प्रकार से हो चुका है। यह करण दो प्रकार के हैं। एक बाह्यकरण तथा दूसरा अंतःकरण। बाह्यकरण की संख्या दस है जिन्हें कर्ण, नेत्र, जिह्वा त्वचा, नासिका, वाक, हस्त, पाद, उपस्थ और पायु कहा जाता है। अंतःकरण की सं0 तीन है जिसे मन, बुद्धि और अहंकार कहते हैं। सत्त्वगुण की वृद्धि से इन करणों में विशेष प्रकाश अर्थात् कार्य करने की विशिष्ट सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। कर्ण से उचित सुनना, नेत्र से उचित देखना, जिह्वा से उचित रस ग्रहण करना और अनावश्यक रसो के प्रति आसक्त न होना। त्वचा से अनुकूल और प्रतिकूल सभी प्रकार के स्पर्शो में समभाव रखना। नासिका से सुगन्ध और दुर्गन्ध के प्रति समानभाव तथा वाणी से संयमित और मृदुभाषिता तथा कर्मेन्द्रियों से भी उचित चेष्टा यह सब क्रियाऐं स्वतः ही उत्पन्न हो जाती हैं। यह तो बाह्यकरण की स्थिति है जिसमें समस्त इन्द्रियां अपने अपने विषयों में बरतती हुई विषयों में आसक्त नहीं होती है। आसक्ति का अभाव सा हो जाता है।

मन और बुद्धि में विशेष प्रकाश उत्पन्न होने का अभिप्राय यह है कि सत्त्वगुण के प्रभाव से मन का अनावश्यक विषयों में विचारण समाप्त होने लगता है और मन में वैराग्य

उत्पन्न हो जाता है। संसार की वस्तुओं और विषय भोगों के प्रति अनिच्छा का भाव रहता है तथा मन को संयमित करने का प्रयास चलता है। मन संयमित रहे इसके लिए इसको परमात्मा की ओर उन्मुख करने की चेष्टा रहती हैं। उसी प्रकार बुद्धि भी मन के द्वारा उचित रूप से विचार किए गए विषयों का विनिश्चय करने लगती है और वह कर्तव्य अकर्तव्य, धर्म, अधर्म, नैतिक, अनैतिक तथ्यों को जान कर और उनमें अंतर स्थापित करके प्रत्येक कार्य का विनिश्चय करती है। अहंकार का प्रभाव प्रतीत होता है अर्थात् दीखता है और सत्त्वगुण की प्रबलता में अहंकार से निवृत होने का मनुष्य प्रयास भी करता है। इस प्रकार अंतःकरण भी सत्त्वगुण के प्रभाव से प्रकाशित होता है।

विशेष तथ्य यह है कि मनुष्य जब साधना की ओर उन्मुख होता है तब वह अपने अभीष्ट पर ध्यान स्थापित करने का प्रयास करता है। सत्त्वगुण के प्रभाव से उसे प्रकाश की अनुभूति होती है। यह अनुभूति रज और तमगुण की प्रधानता से कदापि नहीं होती है। जब तक रज और तम रहता है तब तक प्रकाश का उदय नहीं हो सकता है। सत्त्व गुण के बढ़ने पर साधक को अनेक प्रकार के प्रकाश का सहज आभास होता है और प्रकाश अनेक रंगों में जागृत तथा स्वप्नावस्था में प्रतीत होता है। इसे सत्त्वगुण का कार्यरूप मानना चाहिए, क्योंकि सत्त्वगुण प्रकाश स्वरूप है। जैसे प्रकाश में सभी वस्तुऐं साफ–साफ प्रतीत होती हैं। वैसे ही सत्त्वगुण के बढ़ जाने पर धर्म और अधर्म नैतिकता और अनैतिकता कर्तव्य एवं अकर्तव्य साफ साफ प्रतीत होता है। यही सत्त्वगुण की प्रकाश वृत्ति है।

(दो) ज्ञान वृत्ति :–

सत्त्वगुण के शरीर में प्रकट हो जाने पर अर्थात् सत्त्वगुण की वृद्धि में ज्ञान का प्रकटीकरण स्वतः ही हो जाता है। विशेषकर अनेक प्रकार के आध्यात्मिक ग्रंथों को हम जब पढ़ते हैं उनका स्वाध्याय और अध्ययन करते हैं तो हम जिस ग्रंथ का अध्ययन करते हैं उसकी विषय वस्तु को समझने में हमें कठिनता का आभास होता है। रज और तम गुणों के कारण हमें आध्यात्मिक विषयों को समझने में प्रयास करना पड़ता है और प्रयास से भी यदि वे विषय पढ़े जाते हैं तो भी वे स्मृति में नहीं रहते हैं, परन्तु सत्त्वगुण के बढ़ जाने पर मनुष्य जिन आध्यात्मिक विषयों को पढ़ता है उसका अर्थ सहज रूप से मनुष्य की समझ में आता है। जबतक सत्त्वगुण नहीं बढ़ता है, तब तक हम किसी भी विषय का अध्ययन करते हैं तो एक तो वह शीघ्र समझ में नहीं आता है और समझ में आने पर वह मस्तिष्क में टिकता नही है। विशेष तथ्य यह है कि जो शास्त्रों का अध्ययन करके शास्त्रज्ञ हो जाते हैं उनका जो ज्ञान है वह सत्त्वगुण के कारण ही फलीभूत होता है। उसके बिना नहीं हो सकता है। मनुष्य के हृदय में विशेष प्रकार के विवेक का उदय होना सत्त्वगुण का कार्यरूप

माना जाता है। इस विवेक को ही हम ज्ञान का उदय होना कहते हैं और यह सत्त्वगुण की विशेष वृत्ति है।

मनुष्य में साधना की ओर जब उन्मुखता होती है तब वह पहले तो परमात्मा की अनुभूति का सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है और उसके पश्चात् उस सैद्धान्तिक ज्ञान के आधार पर प्रयोगात्मक आचरण करके परमात्मा की अनुभूति करना चाहता है। परमात्मा की अनुभूति का जो सैद्धान्तिक ज्ञान है वह भी सत्त्वगुण के कारण ही आता है और उसका सही सही विनिश्चय भी हो जाता है। जब तक यह ज्ञान नहीं होता कि हमें परमात्मा कैसे प्राप्त होगा? तब तक हम उस प्रक्रिया का पालन नहीं कर सकते है। इसलिए सत्त्वगुण के प्रभाव से जो ज्ञान का उदय होना कहा जाता है अर्थात् जिसे सत्त्वगुण की वृत्ति माना गया है वह परमात्मा की अनुभूति की प्रक्रिया का सैद्धान्तिक ज्ञान भी है, जिसे हमें समझना चाहिए। इस प्रकार सत्त्वगुण की दूसरी विशेष वृत्ति ज्ञान है।

(ख) रजोगुण की पांच विशिष्ट वृत्तियां :–

रजोगुण की की पांच विशिष्ट वृत्तियां हैं जो भी मानव शरीर में रहती हैं और रजोगुण के मानव शरीर में बढ़ जाने पर वे स्वतः ही प्रकट हो जाती हैं। रजोगुण की इन पांच वृत्तियों को लोभ, प्रवृत्ति, कर्मो का आरम्भ करना, अशम और स्पृहा कहा जाता है। इन पांच वृत्तियों का विवरण निम्न प्रकार है–

(एक) लोभ : पूर्व में भी तमोगुण की लोभ नामक वृत्ति के विषय में कुछ वर्णन किया गया था। लोभ वस्तुतः रजोगुण की विशेष प्रवृत्ति है जो परिणामता तमोगुण के स्वरूप में परिवर्तित हो जाती है। मनुष्य जगत में रहता है और जिस जगत में रहता है उसमें अनेक लुभावनी वस्तुऐं उपस्थित रहती हैं, जिन्हें वह कामनाओं की पूर्ति हेतु प्राप्त करना चाहता है। यदि कामनाओं का समापन हो जाए तो लोभ का भी समापन हो जाता है, क्योंकि वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा का अभाव हो जाता है। लोभ को समाप्त करना है तो कामनाओं को समाप्त कर दें। हमें कुछ नही चाहिए जो कुछ है वह अंततः समाप्त होने वाला है। यह भाव जब दृढ़ हो जाता है तब लोभ का समापन हो जाता है। जब तक यह भाव दृढ़ नहीं होता अथवा हमारे अंतःकरण में नहीं आता है तब तक हमारे पास जो वस्तुऐं और व्यक्ति हैं उनसे सुख प्राप्त करने की इच्छा रहती है और हम उन वस्तुओं और व्यक्तियों को अपने सम्पर्क में और अपने स्वामित्व में रखते हैं और रखने की प्रबल इच्छा करते है। जो वस्तुओं अप्रापत होती हैं उन्हें भी प्राप्त करना चाहते हैं और यह इच्छा प्रबल रहती है कि हमें अप्राप्त वस्तुऐं प्राप्त हों। जो वस्तुऐं हमें प्राप्त हैं वह अपूर्ण हैं। हमें और वस्तुऐं चाहिए। इसी वृत्ति को लोभ के रूप में मानना चाहिए। रजोगुण के उत्पन्न होने पर

यह लोभ नामक वृत्ति बहुत प्रबलता से मनुष्य के अन्दर उत्पन्न हो जाती है और इसका अंततः परिणाम तमोगुण के रूप में प्रकट होता है।

(दो) प्रवृत्ति :–

रजोगुण की दूसरी विशेष वृत्ति प्रवृत्ति है। साधारणतया मनुष्य रजोगुण अधिकता के कारण सुख की आकांक्षा करता है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि वह दैनिक जीवन में सुख और आराम प्राप्त करना चाहता है। उसकी दिनचर्या में प्रतिकूलता न आए इसी भाव से वह सुख की चाहना हेतु प्रवृत्त होता है। यह प्रवृत्ति मनुष्य में रहती है। प्रातः उठकर समय से शौच स्नानादि से निवृत होने पर अच्छे अल्पहार, भोजन की इच्छा करना जो कार्य हो वहां पर भी अच्छे वातावरण और अच्छे स्थान में रहने की इच्छा करना विश्राम के समय अच्छे स्थान की कामना आदि आदि प्रवृत्तियां रजोगुण के कारण ही होती हैं। इस प्रकार सुख की चाहना की इच्छा को प्रवृत्ति कहते हैं। यह प्रवृत्ति रजोगुण के कारण होती है और यह रजोगुण की विशेष वृत्ति मानी जाती हैं। हम सुख की चाहना में अनेक सांसारिक कार्यो की ओर उन्मुख हो जाते हैं। इसे भी प्रवृत्त होना कहा जाता है और यह प्रवृत्त होने का भाव प्रवृत्ति के रूप में परिवर्तित हो जाता है। मनुष्य संसार में बहुत कुछ चाहता है इस कारण वह अनेक चेष्टाओं की ओर प्रवृत्त होता है। यदि कुछ न चाहें तो प्रवृत्त होने का कोई अभिप्राय नहीं है। रजोगुण ही उसे अनेक कार्यो में प्रवृत्त रखता है।

(तीन) कर्मो का आरम्भ करना :–

जब मनुष्य पर रजोगुण का प्रभाव होता है तो वह अनेक प्रकार के नवीन कर्मो को आरम्भ करना चाहता है। आज वर्तमान में एक व्यवसायी मनुष्य को आपने देखा होगा तो पाया होगा कि वह नवीन प्रकार के कार्यो को आरम्भ करने का इच्छुक होता है। अनेक अनेक व्यवसायों में प्रवृत्त होना चाहता है। यह जो इस प्रकार की आकांक्षा है वह रजो गुण के बढ़ने पर होती है। प्रत्येक मनुष्य धन और सम्पत्ति को एकत्र करने का आकांक्षी होता है। यह धन और सम्पत्ति अनेक प्रकार के व्यवसायों को आरम्भ करने से ही प्राप्त हो सकती है। मनुष्य में यह विचार जब प्रबल हो जाता है कि हम अनेक क्षेत्रों में अनेक व्यवसायों को विस्तार देंगे और इसके लिए वह कार्य भी करता है तो इसे कर्मो का आरम्भ करना कहा जाता है। यह कर्मो का आरम्भ करना रजोगुण की विशेष वृत्ति मानी जाती है।

(चार) अशम :–

रजोगुण के प्रभाव से मनुष्य सांसारिक वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा करता है प्राप्त न होने वाली वस्तुओं को भी चाहता है और वस्तुओं की आकांक्षा करने पर उनकी

चाहना करने पर मनुष्य के अंतःकरण में एक उलझन उत्पन्न हो जाती है तथा उसकी शान्ति समाप्त सी हो जाती है। शान्ति समाप्त होने को ही अशान्ति का स्वरूप समझना चाहिए। मनुष्य जब रजोगुण के प्रभाव से संसार की अनेक वस्तुओं की चाहना करता है तो उसके लिए प्रयास भी करता है। यह प्रयास निरन्तर चलता रहता है। इसलिए उसकी शान्ति स्वतः ही गायब हो जाती है। मन अनेक प्रकार के सांसारिक विषयों में स्वतः भ्रमण किया करता है। इसी को अशम की स्थिति कहा जाता है। यह अशम की स्थिति रजोगुण के प्रभाव से होती है तथा मनुष्य कों अनेक प्रकार के सांसारिक कार्यो की ओर उन्मुख कर देती है। इस प्रकार अशम भी रजोगुण की विशेष वृत्ति है।

(पांच) स्पृहा :–

मनुष्य पर जब रजोगुण का प्रभाव रहता है तो वह अपनी आवश्यकता की वस्तुओं की खोज करता रहता है। नई वस्तुओं की खोज करना आवश्यकता की प्रतीति के कारण होता है। संसार में असंख्य वस्तुऐं हैं और उन वस्तुओं का अभाव जब हमें होता है। तो हमें उनकी आवश्यकता का आभास भी होता है। इसी आभास को स्पृहा के रूप में कहा जाता है। एक वांछित वस्तु की प्राप्ति के पश्चात् उसकी आवश्यकता का आभास समाप्त हो जाता है उसके पश्चात् दूसरी नवीन वस्तु की आवश्यकता हमें प्रतीत होती है। इसी को स्पृहा के रूप में जानना चाहिए। संसार में वस्तुऐं अनगिनत हैं इसलिए उनकी आवश्यकता का समापन शीघ्रता से नहीं होता है। इसी कारण मनुष्य में स्पृहा का अभाव भी नहीं होता है। स्पृहा को भी रजोगुण की विशेष वृत्ति समझना चाहिए।

(ग) तमोगुण की चार विशिष्ट वृत्तियां :–

तमोगुण की चार विशिष्ट वृत्तियां हैं जिन्हें अप्रकाश, अप्रवृत्ति, प्रमाद तथा मोह कहते हैं। यह चारों प्रकार की वृत्तियां मनुष्य में तमोगुण के बढ़ जाने पर स्वतः ही व्यक्त होती हैं। तमोगुण की इन चारों वृत्तियों को पृथक्–पृथक् रूप में समझना आवश्यक है।

(एक) अप्रकाश :–

अप्रकाश तमोगुण की विशिष्ट वृत्ति है। अप्रकाश शब्द प्रकाश के प्रतिकूल है। प्रकाश में वस्तुऐं स्पष्ट रूप से प्रतीत होती हैं, दीखती हैं। इसका अर्थ है कि जब शरीर में प्रकाश अर्थात् सत्त्वगुण रहता है तो विवेक भी रहता है और वह विवेक ही मनुष्य को उचित अनुचित, कर्तव्य,अकर्तव्य का ज्ञान करवाता रहता है। इसके प्रतिकूल जब अप्रकाश आ जाता है तो उसमें उचित अनुचित, कर्तव्य अकर्तव्य के बोध की शक्ति समाप्त हो जाती है। इसे ही अप्रकाश कहते हैं। सत्व गुण की प्रकाश वृत्ति का उल्लेख उपरोक्त प्रकार से

हो चुका है। उसी वृत्ति के प्रतिकूल जो प्रवृत्ति है उसे अप्रकाश कहते हैं। तमोगुण की अधिकता से मनुष्य की बुद्धि सही तथ्य, कार्य, वस्तु, कर्तव्य, धर्म आदि का सही सही विनिश्चय नहीं कर पाती है तथा वह भ्रमित रहती है। इस भ्रमपूर्ण स्थिति का आधार अप्रकाश है। यही अप्रकाश तमोगुण की विशेष वृत्ति है।

(दो) अप्रवृत्ति :–

अप्रवृत्ति प्रवृत्ति के प्रतिकूल शब्द है। प्रवृत्ति तो रजोगुण की वृत्ति है और अप्रवृत्ति तमोगुण की वृत्ति है। प्रवृत्ति वृत्ति के अधीन मनुष्य नाना प्रकार के सांसारिक कार्य और चेष्टाऐं स्वतः ही करता रहता है, क्योंकि रजोगुण उसे ऐसा करने के लिए बाध्य करते हैं। मनुष्य जब तमोगुण के प्रभाव में आ जाता है तो मनुष्य में अप्रवृत्ति वृत्ति आ जाती है। ऐसी स्थिति में वह कोई भी कार्य नहीं करना चाहता है तथा आवश्यक कर्म भी करने की इच्छा नहीं करता है। उसकी दिनचर्या असंतुलित हो जाती है। प्रातः समय से न उठना, देर में सोकर उठना, शौच स्नानादि कर्मो का सम्पादन न करना, समय से भोजन न करना, न करने योग्य कार्य करना, जो व्यवहार उचित नहीं है उसे करना आदि आदि सभी अप्रवृत्ति वृत्ति के लक्षण हैं। इस प्रकार यह अप्रवृत्ति भी तमोगुण की विशेष वृत्ति मानी जाती है।

(तीन) प्रमाद :–

मनुष्य तमोगुण के प्रभाव से प्रमादी हो जाता है। तमोगुण के प्रभाव का विशिष्ट लक्षण निद्रा है तथा आलस्य भी है। जब मनुष्य में स्वाभाविक निद्रा के अतिरिक्त निद्रा रहती है तो वह तमोगुण के प्रभाव से रहती है। जब मनुष्य तमोगुणी निद्रा के प्रभाव में रहता है तो वह सामान्य रूप से कोई कार्य नहीं करना चाहता। क्यों नहीं करना चाहता है? क्योंकि उस पर निद्रा का प्रभाव है। या इस तथ्य को इस प्रकार कहें कि उस मनुष्य पर तमोगुण का प्रभाव है। यह कार्य न करना ही प्रमाद कहा जाता है। कोई कार्य करता है तो उसमें निरन्तर लगा रहता है परन्तु प्रमाद से आवृत मनुष्य कोई कार्य ही नहीं करना चाहता। इसका यही कारण है कि वह तमोगुण के विशेष प्रभाव से आच्छादित है तथा आलस्य के वशीभूत हो गया है। कार्य टालने की प्रवृत्ति रखना भी प्रमाद का एक स्वरूप है। इस प्रकार निद्रा के कारण तथा आलस्य के कारण भी प्रमाद रहता है और इसी प्रमाद को तमोगुण की विशेष वृत्ति माना जाता है।

(चार) मोह :–

हम सभी जो वस्तुऐं और सम्बंध अपने जीवन में एकत्र कर पाते हैं उनसे हमें सुख का आभास रहता है। धीरे–धीरे समय के साथ यह बढ़ता जाता है। वृद्धावस्था में विशेष हो

जाता है। जैसे मनुष्य जीवनपर्यन्त कड़ी मेहनत करके काफी कुछ धन एकत्र कर लेता है सम्पत्ति बना लेता है, तो उसे उससे मोह हो जाता है। मोह के कारण ही अपने द्वारा उपार्जित धन सम्पत्ति का विनाश होते यदि वह देखता है तो उसके अत्यंत दुख होता है और वह शोक से आवृत हो जाता है। यह दुख और शोक वस्तुओं के प्रति मोह के कारण होता है। मोह से मूढता और मूर्खता का भाव भी उत्पन्न हो जाता है तो मोह के कारण अपने परिवारीजन, सगे सम्बंधियों को दुःखी देखकर अथवा उसका वियोग होते देखकर वह दुःखी होता है। मोह तमोगुण की एक विशेष वृत्ति है जो सामान्यतः सभी मनुष्यों में रहती है, परन्तु तमोगुण से आवृत मनुष्य में में यह वृत्ति विशेष रूप से रहती है और प्रकट हो जाती है।

इस प्रकार सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण की 11 विशेष वृत्तियों का वर्णन हुआ। विशेष वृत्तियों का अर्थ यह है कि यह वृत्तियां गुणों के प्रभाव से मनुष्य में रहती है और उसके साथ उसके सहयोगी की तरह से कार्य करती हैं। जिस गुण के अधीन मनुष्य रहता है वैसी ही वृत्तियां मनुष्य में स्वतः ही प्रकट होती हैं। मनुष्य किसी भी काल देश का रहने वाला हो उसके गुण प्रभावित करते हैं और गुणों से उत्पन्न वृत्तियों के अधीन ही वह रह सकता है। उससे परे जा पाना संभव नहीं है। मनुष्य की क्रियाविधि को देखकर उसके गुण और वृत्तियों का सहजता से अनुमान लगाया जा सकता है। मनुष्य सत्त्वगुणी है, रजोगुणी अथवा तमोगुणी है। उक्त ग्यारह प्रकार की वृत्तियों को सहज भाव से समझ लेने पर हम प्रत्येक मनुष्य के गुण का निर्धारण कर सकते हैं।

(8) त्रिगुणों का विकास एवं पतन :–

मनुष्य शरीर त्रिगुणों के अधीन रहता है, क्योंकि शरीर में किसी न किसी गुण की प्रधानता अवश्य रहती है। एक गुण की प्रधानता रहने पर दूसरे गुण स्वतः ही पतन को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार त्रिगुणों के विकास एवं ह्रास की प्रक्रिया चलती रहती है। इस प्रक्रिया को हमें समझना पड़ेगा। इस तथ्य को सहजता से समझने के लिए हम यह जान लें यदि मनुष्य शरीर में सत्त्वगुण बढ़ जाता है तो तम और रज दब जाता है। रजगुण के बढ़ने पर तम और सत्त्व दब जाते हैं। इसी प्रकार तम के बढ़ जाने पर तम और सत्त्व दब जाते हैं। इसी को त्रिगुणों का विकास एवं पतन कहा जाता है। इस विकास और पतन का विवरण निम्न प्रकार है।

(क) सत्त्वगुण की वृद्धि रज और तम का ह्रास :–

मानव शरीर में गुणों के ह्रास और वृद्धि की प्रक्रिया क्रमिक और सुव्यवस्थित है। जैसे जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है तो रज और तमगुण का स्वतः ही ह्रास हो जाता है।

दो गुण जब घटते हैं तो एक गुण वृद्धि को प्राप्त करता है। यह क्रिया स्वतः और स्वाभाविक रूप से होती है। सत्त्वगुण जब बढेगा तो मनुष्य में बोलचाल में विनम्रता और सरलता रहेगी। उसके चिंतन में स्वयं को जानने के प्रति चिंता रहेगी। अपने से श्रेष्ठजनों के प्रति श्रद्धा का भाव रहेगा। असामाजिक और अनैतिक कार्यो में लज्जा का भाव रहेगा। मन को संयमित करने और इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाने की इच्छा रहेगी। किसी भी कष्ट के आ जाने पर शान्तिपूर्वक उसे सहन करने की क्षमता रहेगी। सत्य का आचरण प्रकट होगा और तपश्चर्या का अभाव भी रहेगा। गरीबों को देखकर उनके प्रति दया का भाव प्रकट हो जाएगा। अपनी स्थिति में संतुष्टि का भाव प्रबलता से रहेगा आदि आदि गुण प्रकट हो जाने पर सत्त्वगुण की वृद्धि को समझना चाहिए।

इसके साथ ही जब उपरोक्त गुण प्रकट हो जायेंगे तो उसमें कठोरता का अभाव हो जाएगा। बातचीत में रूखापन प्रतीत नहीं होगा। स्वयं के लिए कार्य करने के भाव का अभाव होगा। असत्य आचरण, असंतोष तथा दूसरों के उत्पीड़न के भाव का अभाव रहेगा। क्रोध और कर्मविहीनता भय और अनिद्रा, आलस्य, प्रमाद, दीनता का अभाव, शोक, मोह, विषाद, याचना की प्रवृत्ति स्वतः ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार सत्त्व गुण के बढ़ जाने पर रज और तम गुण की वृत्तियों का ह्रास मनुष्य में हो जाता है। इसका आधारभूत कारण यह है कि मनुष्य में सत्त्वगुण की वृद्धि होती है, रज और तम का ह्रास हो जाता हैं। यह वृद्धि और ह्रास चलता रहता है।

(ख) रजोगुण की वृद्धि सत्त्व और तमगुण का ह्रास :–

मनुष्य में रजोगुण की वृद्धि हो जाती है तो उसमें असंख्य कामनाओं का उदय और स्वतः ही प्रादुर्भाव होता है। असंख्य कामनाओं के उत्पन्न होने पर उन कामनाओं की प्राप्ति का प्रयास, भोगवृत्ति और अहंकार का स्वतः प्रादुर्भाव होता है। ऐसी स्थिति में संशय भी प्रकट होता है। सकामभाव से पूजा उपासना प्रकट होती है और तृष्णा का भाव रहता है अर्थात् उसे सांसारिक भोगों और कामनाओं की इच्छा रहती है। उपर्युक्त गुण सात्त्विक मनुष्यों में नहीं पाये जाते हैं। सात्त्विक पुरूषों की कामनाऐं शान्त होने लगती हैं तथा वह अनावश्यक कामनाऐं नहीं करता है। जब अनावश्यक कामनाऐं नहीं होती हैं तो उनकी प्राप्ति का प्रयास भी नहीं होता है। भोगों को क्षणिक समझ कर भोग की वृत्ति से मनुष्य पृथक् रहता है तथा संशय का विनाश प्रकाशवृत्ति के कारण हो जाता है। इसी प्रकार रजोगुण के प्रभाव से सात्त्विक गुण का समापन हो जाता है। तमोगुण की वृत्तियां भी अप्रकट रहती हैं। राजसी गुण प्रधान मनुष्यों में क्रियाशीलता विशेष रहती है, इसलिए उसमें प्रमाद, आलस्य निद्रा भी नहीं रहती है। सांसारिक कार्यो के प्रति क्रियाशीलता रहने पर

मनुष्य सजग होकर कार्य करता है, और तमोगुण की वृत्तियों का भी उसमें अभाव पाया जाता है। वह अपने परिश्रम से अनेक प्रकार की सांसारिक वस्तुऐं, धन आदि प्राप्त करने का इच्छुक होता है। इस प्रकार रजोगुण की वृद्धि होने पर सत्त्व और तमगुण का ह्रास हो जाता है।

(ग) तमोगुण की वृद्धि सत्त्व एवं रजगुण का ह्रास :– तमोगुण से आवृत्त मनुष्य में चूंकि अज्ञान का प्रादुर्भाव हो जाता है। अज्ञान से आवृत रहने के कारण उसमें तमोगुण की वृत्तियां निद्रा, आलस्य आदि प्रकट हो जाते हैं। यह गुण सात्त्विक और रजोगुण के प्रतिकूल गुण है। तामसी मनुष्य में अज्ञान रहता है। सात्त्विक मनुष्य में ज्ञान रहता है। राजसी मनुष्य में अज्ञान तथा ज्ञान के मध्य की स्थिति रहती है। तमोगुणी मनुष्य निद्रा के वशीभूत रहता है। सात्त्विक मनुष्य में चैतन्यता रहती है और वह चेतन रहता है। राजसी मनुष्य में सुख भोग के प्रति क्रियाशीलता रहती है तामसी मनुष्य में आलस्य प्रमाद रहता है। इसलिए उसकी भोगवृत्ति अत्यंत निकृष्ट हो जाती है। सात्त्विक मनुष्य में जागृति रहती है। राजसी मनुष्य में कामनाओं की प्राप्ति हेतु क्रियाशीलता रहती है। तामसी मनुष्य में हठ रहता है। सात्त्विक मनुष्य में यथार्थ बोध रहता है और राजसी पुरूष में संशय रहता है। तामसी मनुष्य भूत प्रेतों की उपासना करता है। राजसी मनुष्य देवताओं और श्रीभगवान की उपासना करता है। राजसी मनुष्य यक्ष और राक्षसों की पूजा करता है। इस प्रकार मनुष्य में जब तमोगुण का प्रादुर्भाव हो जाता है तो सत्त्व, रज का ह्रास होता है।

सत्त्वगुण में जब मनुष्य रहता तो रज और तम उसे स्वतः ही छोड़ देते हैं क्योंकि रज और तम में जो गुण हैं वे सात्त्विक गुण में नहीं हैं। इस प्रकार मनुष्य जब रजोगुण से आवृत हो जाता है तो सात्त्विक और तमोगुण उसे स्वतः ही छोड़ देते हैं। तामसी पुरूष को सात्त्विक और राजसी गुण भी स्वतः ही छोड़ते हैं।

विशेष तथ्य :–

मनुष्य में यदि सात्त्विक गुणों की प्रधानता है तो वह कार्य करते हुए थकावट आने पर रजोगुण उसे घेर लेता है तथा जब बुद्धि थकावट के कारण कार्य नहीं करती है तो उसे तमोगुण की निद्रा की ओर ले जाता है परन्तु सात्त्विक मनुष्य शीघ्र ही वास्तविक निद्रा के सेवन से रजोगुण और तमोगुण को समाप्त कर देता है। पुनः सात्त्विक गुण प्रकट कर लेता है। इसी प्रकार रजोगुण प्रधान पुरूष यदि कार्य करने पर थक जाता है तो शीघ्र तमोगुण से आवृत होकर सो जाता है और जागने पर कुछ पल के लिए उसमें सत्त्वगुण का प्रभाव दीखता है परन्तु वह पुनः रजोगुण से आवृत होकर राजसी वृत्ति से कार्य करने लगता है। जो मनुष्य तमोगुण की प्रधानता वाला है उसे सदैव ही निद्रा, आलस्य घेरे रहता

है। निद्रा के पश्चात् भी उसमें निद्रा का भाव रहता है। आलस्य भी रहता है। ऐसे तमोगुणी मनुष्यों को सत्त्वगुण छू भी नहीं पाता है। तमोगुणी मनुष्य सत्संग आदि कार्यक्रमों में जाते नहीं हैं। यदि पहुंच भी जाते हैं तो उनका मन वहां नहीं लगता है और बाध्यता के कारण बैठने पर वह सत्संग में सोया करते हैं। ऐसा मनुष्य तमोगुणी प्रधान मनुष्य है।

(9) त्रिगुणों का शरीर पर प्रभाव और उसके विशिष्ट लक्षण :–

त्रिगुणों का शरीर पर प्रत्येक समय प्रभाव रहता है अर्थात् मानव शरीर कभी भी त्रिगुणों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाता है। जिस गुण का प्रभाव मानव शरीर पर रहता है उसके ही लक्षण स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। त्रिगुणों के प्रभाव तथा उसके लक्षण को समझ कर त्रिगुणों की स्थिति का आंकलन हम सहजता से कर सकते हैं। शरीर किस गुण से प्रभावित है उसके समझने के लिए उसके लक्षणों को जानना चाहिए। प्रत्येक गुण के पृथक्–पृथक् लक्षणों का यहां प्रस्तुतीकरण किया जा रहा है।

(क) सत्त्वगुण के प्रभाव के लक्षण :–

सत्त्वगुण का जब शरीर पर प्रभाव होता है तब निम्न लक्षण स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। इन लक्षणों को देखकर, समझकर हमें यह अनुमान लगाना चाहिए कि मनुष्य शरीर सत्त्वगुण के अधीन है और उसके स्वभाव से ही निम्न लक्षण प्रकट हो रहे हैं।

(एक) मन में प्रसन्नता का प्रादुर्भाव :–

जब सात्त्विक गुण का शरीर पर प्रभाव पड़ता है तब मन में प्रसन्नता का स्वतः ही प्रादुर्भाव होता है। यह प्रसन्नता बनावटी नहीं होती है। स्वतः एवं स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाती है। अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त होने पर अथवा मनोवांछित वस्तु मिलने पर जो प्रसन्नता उत्पन्न होती है वह प्रसन्नता प्रतिकूलताओं के आने पर स्वतः ही समाप्त हो जाती है। सात्त्विक गुण के प्रादुर्भाव से जो प्रसन्नता आती है वह पृथक् प्रकार की होती है और उससे अंतःकरण प्रसन्न रहता है। प्रतिकूलताओं के आने पर सात्त्विक प्रसन्नता का विनाश नहीं होता है। यही सात्त्विक प्रसन्नता का लक्षण है। मनुष्य में जब इस प्रकार की प्रसन्नता का प्रादुर्भाव हो जाए तब यह समझना चाहिए कि सत्त्वगुण शरीर में बढ़ा हुआ है अर्थात् वृद्धि को प्राप्त हुआ है।

(दो) इन्द्रियों में चैतन्यता :–

ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों दोनों में ही सत्त्वगुण के विकास से चैतन्यता रहती है। ज्ञानेन्द्रियों में जब चैतन्यता आ जाती है तो ज्ञानेन्द्रियों के कार्य करने की शक्ति में विशेष वृद्धि हो जाती है। शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गंध के ग्रहण करने में सात्त्विकता रहती है। वैसे

जब शरीर में रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता रहती है तब वैसी चैतन्यता इन्द्रियों में नहीं रहती है। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियों में भी कार्य करने की विशेष शक्ति रहती है। आलस्य तथा प्रमाद भी नहीं रहता है। रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से कर्मेन्द्रियों में विशेष चैतन्यता नहीं रहती है। सात्त्विक गुण के प्रभाव से वाणी आदि में विशेष प्रस्तुतिकरण करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है। वैसा अन्य गुणों के प्रभाव में नहीं रहता है। इस प्रकार सात्त्विक गुणों के प्रभाव से इन्द्रियों में चैतन्यता रहती है तथा कार्य करने की विशेष शक्ति का स्वतः ही उदय होता है।

(तीन) शास्त्राध्यन में रूचि :–

सात्त्विक गुण का प्रभाव जब शरीर पर बढता है तब सद्शास्त्रों के अध्ययन में रूचि स्वतः ही बढ़ जाती है। मनुष्य पर जब सात्त्विक गुणों का प्रभाव बढ़ता है तो वह अध्यात्मिक शास्त्रों की स्वतः ही आकर्षित होता है। अनेक प्रकार के आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन करने की इच्छा उसमें प्रबल हो जाती है और उन तथ्यों को वह जानना चाहता है जो जीवन के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त पारलौकिक जगत के सम्बंध में, उनकी रहस्यों के बारे में जानने की जिज्ञासा बलवती हो जाती है। हमें साधारणतया लौकिक जीवन के बारे में कुछ तथ्यों का ज्ञान रहता है क्योंकि हम उसका प्रतिदिन व्यवहार करते हैं और उससे हमें कुछ अनुभव प्राप्त हो जाता है परन्तु पारलौकिक जीवन के बारे में शास्त्र ही हमें बता सकते हैं। सात्विक गुण के प्रभाव से मनुष्य में पारलौकिक जीवन के जानने के बारे में रूचि बढ़ती है और वह मनुष्य शास़्त्रों की ओर स्वतः बढ़ जाता है। इस प्रकार अनेक प्रकार के जो धार्मिक ग्रंथ हैं उनमें अध्ययन में रूचि सत्त्वगुण के प्रभाव के बढ़ने से ही उत्पन्न होती है।

(चार) सत्संग के सेवन की प्रवृत्ति :–

सत्संग की ओर मनुष्य अनायास ही उन्मुख नहीं होता है। जब उसमें सात्त्विक गुण का प्रभाव बढ़ता है तथा सत्संग के सेवन की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है तो इसे सत्त्वगुण का प्रभाव मानना चाहिए। साधु पुरूषों, शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वानों, तत्त्वदर्शी महानुभावों के साथ रहना, उनकी अमृतवाणी का सेवन करना तथा जहां कहीं भी उनके प्रवचन हो रहे हों उसमें सम्मिलित होना ही सत्संग कहा जाता है। जब मनुष्य के मन में असार संसार के प्रति रूचि समाप्त होने लगती है तब वह सांसारिक विषयों और भोगों से घृणा करता है। तब सत्य की खोज एवं अपने कल्याण के बारे में विचार करता है। ऐसी स्थिति में उसे साधु पुरूषों का संग, अध्यात्म के विषय में जानकारों का साथ और उनकी शरण में रहने की इच्छा प्रकट हो जाती है। यह भावना तथा प्रवृत्ति सात्त्विक गुण के प्रभाव से ही उत्पन्न

होती है। सात्त्विक गुण के प्रभाव से मनुष्य सत्संग का सेवन करना चाहता है और उसमें विशेष रूचि रखता है। साधु पुरूषों के वचनों को विशेष ध्यान एवं तर्क से सुनता है।

(पांच) अनावश्यक बातचीत से परहेज :–

सत्त्वगुण से प्रभावित मनुष्य का विशेष लक्षण है कि अनावश्यक व्यर्थ सांसारिक बातों से परहेज करता है। वह न तो संसार की बाते करना चाहता है और न ही सुनना चाहता है। यह प्रवृत्ति सत्त्वगुण के कारण प्रकट हो जाती है। संसार के विषय की बातों में जब स्वाभाविक रूप से अनिच्छा प्रकट हो जावे तो समझना चाहिए सत्त्वगुण बढ़ा हुआ है। संसार के बारे में क्या बाते हो सकती है ? संसार के क्या क्या विषय हैं। संसार में क्या क्या हो रहा है ? यह हम सभी जानते हैं और उसी के सम्बंध में हम सभी लोग सामान्य रूप से बातचीत करते रहते हैं। ऐसा करने से हमें संसार के संदर्भ में अनेक प्रकार की जानकारियां प्राप्त हो जाती हैं। परन्तु जितनी जानकारियां हमें सांसारिक विषयों की प्राप्त होती हैं उनसे हमारा स्वयं का कल्याण नहीं हो सकता है, क्योंकि संसार के अधिक जानकारी प्राप्त करने पर वे हमारी स्मृति में संचित हो जाती है और जब हम परमात्मा की ओर उन्मुख होना चाहते हैं तो हमारी स्मृति में संचित जानकारी भी हमारे साधन में बाधा उत्पन्न करती है। सत्त्वगुण के उदय हो जाने पर मनुष्य न तो संसार के बारे में जानना चाहता है और न ही वह संसार के बारे में वह अधिक बात करना चाहता है तथा अनावश्यक बातचीत से परहेज करता है।

(छः) सर्वत्र स्नेह :–

सात्त्विकगुण प्रधान मनुष्य इस संसार के समग्र जीवो की वास्तविकता से और उनकी स्थिति से परिचित हो जाता है और वह यह जान जाता है कि परमात्मा एक है और उसका अंश ही समस्त जीवों में व्याप्त है। प्रत्येक जीव में जो चैतन्यता है वह उसी अंश के कारण है। यह तथ्य जान लेने पर तथा उसको दृढ़ता से मान लेने पर मनुष्य की समस्त जीवों के प्रति विचारों में परिवर्तन हो जाता है और वह सभी से स्नेह करता है, क्योंकि सबमें परमात्मा का अंश विद्यमान है। यह विचार दृढ़ होना तथा इसको दृढ़ता से मानना सात्त्विक गुण के कारण ही होता है। इस कारण सात्त्विक गुण की प्रधानता से मनुष्य सर्वत्र स्नेह करता है।

(सात) ईष्या द्वेष का अभाव :–

सात्त्विक गुण के प्रकटीकरण से मनुष्य में ईर्ष्या और द्वेष का अभाव हो जाता है। ईष्या और द्वेष का प्रमुख कारण यह है कि हम संसार से सुख प्राप्त करने का प्रयास करते

हैं और जब हमें सुख प्राप्त करने में किसी बाधा का आभास होता है, तो हम उस बाधा उत्पन्न करने वाले तत्त्व के प्रति ईर्ष्या का भाव रखते हैं। ऐसे में मनुष्य में ईर्ष्या का स्वतः ही प्रादुर्भाव होता है। रजोगुण और तमोगुण से आवृत रहने पर ईर्ष्या और द्वेष अवश्य रहता है। रजोगुण के कार्यरूप अनेक प्रकार की कामनाऐं और तमोगुण के कार्यरूप अनेक प्रकार के असामाजिक कर्मो में बाधाओं का होना निश्चित है। कामनाओं की पूर्ति में बाधा आती है और असामाजिक कार्यो के सम्पादन में भी अनेक प्रकार की बाधाऐं उत्पन्न होती हैं। इसलिए द्वेष भाव निश्चित रूप से रहता है। सात्त्विक गुण के प्रकटीकरण में कामनाओं का भी अभाव होने लगता है और असामाजिक कार्यो का सम्पादन भी रूक जाता है। इसलिए सत्त्व गुण की प्रबलता में ईर्ष्या और द्वेष का अभाव सा प्रतीत होता है। अर्थात् उनका समापन हो जाता है।

(आठ) मृदुभाषिता :–

सत्त्वगुण प्रधान मनुष्य का विशेष लक्षण मृदुभाषिता है। प्रत्येक मनुष्य यथा व्यवहार और आचरण करता है। इसका अभिप्राय यह है कि हम जैसा आचरण दूसरों के प्रति करते हैं वैसा ही व्यवहार हमें भी प्राप्त होता है। सत्त्वगुण की प्रधानता से मनुष्य व्यवहार करने वाले के समान व्यवहार नहीं करता है वरन् अपनी सात्त्विक प्रकृति के आधार पर व्यवहार करने को उद्धत होता है। रज और तमगुण हमें यह सिखाते हैं कि हमसे जो जैसा व्यवहार करे वैसा व्यवहार हम उससे करें अथवा अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी भी प्रकार का व्यवहार करें। इस प्रकार स्वार्थ के हल में जो व्यवहार होता है उसमें कभी–कभी मृदुभाषिता प्रकट होती है परन्तु वह अधिकांशता अंत में कटुभाषिता के रूप में परिवर्तित हो जाती है। सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्य में मृदुभाषिता का उदय और सामाजिक व्यवहार का उदय स्वतः ही हो जाता है और वह प्रत्येक स्थिति में सभी से मृदु व्यवहार करता है। यह व्यवहार सत्त्वगुण के कारण ही प्रकट होता है।

(ख) राजसी गुण के प्रभाव के लक्षण :–

रजोगुण के प्रभाव से शरीर पर वे लक्षण प्रकट हो जाते हैं जो उसकी प्रवृत्तियां होती हैं। रजोगुण से प्रभावित मनुष्य में कुछ विशेष प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं जिन्हें हम जानकर यह जान सकते हैं कि मनुष्य में रजोगुण बढ़ा हुआ है। कुछ लक्षणों का विवरण निम्न प्रकार है।

(एक) सांसारिक कामनाओं की प्रवृत्ति :–

रजोगुण की प्रधानता से मनुष्य में सांसारिक कामनाऐं स्वतः ही जागृत हो जाती हैं। सांसारिक कामनाओं की संख्या को बताया जा पाना और उसे वर्गीकृत किया जा पाना

असंभव है। जो मनुष्य जिस स्तर का होता है वह अपने स्तर की कामनाओं के बारे में ही विचार करता है। निम्न वर्ग की कामनाऐं निम्न स्तर की होती हैं। मध्यमवर्गीय व्यक्तियों की कामनाऐं मध्यम स्तर की होती हैं और उच्चवर्ग की कामनाऐं उच्च स्तरीय होती हैं, परन्तु यह सब रजोगुण के प्रभाव से ही होता हैं रजोगुण प्रत्येक मनुष्य को प्रभावित करता है। इस कारण ही ऐसा होता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य चाहें वह किसी भी स्तर का हो उसे रजोगुण प्रभावित करता है और उसमें सांसारिक कामनाओं की प्रवृत्ति स्वतः ही प्रकट कर देता है। कामनाओं के बारे में जब विचार करते हैं तो हमें यह ज्ञात होता है कि सबकी सब कामनाऐं रजोगुण का ही कार्यरूप है। जब मनुष्य में अनेक प्रकार की सांसारिक कामनाऐं प्रकट हो जाऐ तो यह समझना चाहिए कि उसका रजोगुण बढ़ा हुआ है।

(दो) तृष्णावृत्ति :–

रजोगुण सांसारिक विषयों की तृष्णा उत्पन्न कर देता है। रजोगुण के प्रभाव से ही मनुष्य कर्णप्रिय, मनोहारी, संगीत और मधुर गीत सुनने की इच्छा करता है। अच्छे और सुन्दर दृश्य देखना चाहता है और निरन्तर देखने में प्रवृत्त रहता है। सुस्वादु नाना प्रकार के भोजन को भी ग्रहण करना चाहता है। कोमल स्पर्श चाहता है और विभिन्न प्रकार के पुष्पों की सुगन्ध लेने का आकांक्षी होता है। यह ग्रहण करने की प्रक्रिया निरन्तर रहती है और उत्पन्न हुआ करती है। निरन्तर रहना तथा कभी समाप्त न होना ही तृष्णा का स्वरूप है। यह तृष्णा रजोगुण के प्रभाव से होती है। आज के युग में तृष्णा के कारण ही मनुष्य नाना प्रकार के दुर्व्यसनों का शिकार हो रहा है और उन दुर्व्यसनों से निकल न पाना तृष्णा के कारण ही होता है। अनेक आसामाजिक कृत्यों का सम्पादन वह अनेकों बार करता है। यह उसकी एक प्रकार की तृष्णा ही है जो उसे असामाजिक कार्यो में लगाए रखती है।

(तीन) कल्पनाशीलता :–

रजोगुण के प्रभाव से मनुष्य कल्पनाशील हो जाता है। संकल्प मन की वृत्ति है परन्तु संकल्प शब्द का अर्थ बहुत विस्तृत है उसमें मन की समस्त क्रियाशीलता ही समाहित है। मन जो भी विचार कर सकता है उसके विचारण के प्रमुखता से दो ही भाग हैं। दो ही विषय हैं। दो ही प्रकार हैं। एक यथार्थता का विचार और दूसरा कल्पनाशीलता का विचार। जो विषय, पदार्थ हैं उसके सम्बंध के विचारण को यथार्थ कहा जाता है। परमात्मा यथार्थ है इस कारण उसके विषय में विचार को यथार्थ विचारण कहा जाता है तथा संसार यथार्थ नहीं है नित्य परिवर्तनशील है, विकारी है। इस कारण संसार के बारे में जो कुछ भी विचार होता है वह वस्तुतः यथार्थ नहीं होता। संसार दिख रहा है उससे हम व्यवहार कर रहे हैं परन्तु उस दिखने वाले संसार से भी पृथक् जब हम विचार करने लगते

हैं तो इसे कल्पना कहा जाता है। बिना आधार के जो विचारण है वह सबका सब कल्पना के अन्तर्गत आता है। मनुष्य जब रजोगुण के प्रभाव से अनेक प्रकार की कल्पना करता है तथा कल्पनाशील जगत में रहता है तो वह कल्पनाओं में जीता है। कल्पना को भी एक प्रकार का संकल्प भी मानना चाहिए। यह कल्पनाशीलता रजोगुण का विशेष लक्षण है।

(चार) धन सम्पत्ति एकत्र करने का प्रयास :–

रजोगुण से प्रभावित मनुष्य नित नये प्रयास और धन और सम्पत्ति एकत्र करने का प्रयास करता है तथा उसे कितनी ही मात्रा में धन और सम्पत्ति उपलब्ध हो जावे तो भी वह उससे अधिक धन सम्पत्ति एकत्र करने के लिए प्रयत्नशील होता है। यह कार्यक्रम कभी समाप्त नहीं होता है। उसका एक ही कारण है कि ऐसा मनुष्य रजोगुण से प्रभावित रहता है। आज अधिकांश मनुष्यों में यह स्थिति देखी जाती है वे कहीं भी, कभी भी किसी से भी बाते करते हैं तो उनकी बातचीत का एक ही विषय होता है कि धन, सम्पत्ति कैसे एकत्र की जाए। कैसे प्राप्त की जाए। उनका समस्त कार्यक्रम, क्रियाविधि, चेष्टा सभी कुछ धन के उर्पाजन से सम्बंधित रहती है। अनेक प्रकार के सेमिनार गोष्ठियां आदि में जो विचार होता है वह धन के उपार्जन के उद्देश्य से होता है। यह सबका सब रजोगुण के प्रभाव से ही होता है। धन और सम्पत्ति एकत्र करने के संदर्भ में जो वार्तालाप करें बातचीत करें तो यह स्पष्ट समझना चाहिए कि वह रजोगुण से प्रभावित है।

(पांच) ईर्ष्या द्वेष की प्रमुखता :–

रजोगुण से प्रभावित मनुष्यों में ईर्ष्या और द्वेष की प्रमुखता रहती है। अपने अहित करने वालों के प्रति, अहित किये जाने की आशंका वालों के प्रति, प्रतिस्पर्धा के भाव से और उत्कृष्टता को देखकर भी ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। ईर्ष्या उत्पन्न होने के और भी कारण हो सकते हैं परन्तु जब यह उत्पन्न हो जाती है तो अंतःकरण में रहती है। मन उस सम्बंध में विचार करता है और बुद्धि ईर्ष्या के बारे में विनिश्चय करती है। ईर्ष्या और द्वेष का मन में आना तथा वहां पर बने रहना रजोगुण के कारण ही होता है। ईर्ष्या तथा द्वेष का प्रमुख कारण ही रजोगुण की वृत्ति है। इस प्रकार जो मनुष्य ईर्ष्या और द्वेष से प्रमुखता से प्रभावित हो तो उसे रजोगुण से प्रभावित मानना चाहिए।

(छः) दूसरों में दोष निकालने की प्रवृत्ति :–

मनुष्यों में दूसरों के दोषों को खोजने की प्रवृत्ति रजोगुण के कारण होती है। जब मनुष्य अपने दोषों पर विचार करता है तथा उन दोषों को समाप्त करने का यत्न भी करता है तो यह प्रयत्नशीलता सत्त्वगुण के प्रभाव के कारण होती है और ऐसे व्यक्ति को सत्त्व

गुण के अधीन मानना चाहिए। इसके प्रतिकूल जब मनुष्य अपने दोषों पर विचार न करके दूसरों के दोषों को विचार कर उनकी व्याख्या करता है तो समझना चाहिए कि उसमें रजोगुण की प्रवृत्ति बहुत तेजी से बढ़ रही है। दूसरों के दोषों को खोजना और उन पर चर्चा करना यह रजोगुण का कार्यरूप है। इस दोष से आवृत मनुष्य अपने दोषों पर दृष्टि न डालकर, विचार न करके दूसरे के दोषों पर दृष्टि डालता है और उन पर विचार करता रहता है तथा उनकी व्याख्या भी करता है। इस प्रकार दूसरों के दोषों को निकालने की जो प्रवृत्ति है वह रजोगुण के कारण होती है और ऐसे व्यक्ति को रजोगुणी मानना चाहिए।

(सात) भोगवृत्ति एवं अनावश्यक कार्यो में समय नष्ट करना :–

सांसारिक भोगों में, विषयों में जब मनुष्य की प्रवृत्ति हो जाती है तब वह पूरी तरह से रजोगुण के अधीन कार्य करता है। इस रजोगुण की प्रवृत्ति से मनुष्य में सांसारिक भोगों के प्रति भोगवृत्ति उत्पन्न हो जाती है और वह अपना समय अनावश्यक कार्यो में समाप्त करता है। बहुत से लोगों को आपने यह कहते सुना होगा कि हमारा समय काटे नहीं कटता है। यह रजोगुण का विशेष प्रभाव है तब वह समय को काटने के लिए अनेक प्रकार के मनोरंजन के साधन खोजता है और वह यह विचार करता है कि समय को कैसे काटा जाए? यह एक विशेष स्थिति है जो मूल्यवान समय को अनावश्यक कार्यो में विनिष्ट करती है। ऐसा मनुष्य रजोगुण से पूरी तरह से प्रभावित हो जाता है तथा वह किसी कार्य को न करके वरन् एक मात्र भोगवृत्ति की ओर ही उन्मुख रहता है। संसार में जो अनावश्यक प्रकार के अनेक कार्यो का किया जाना है वह रजोगुण के कारण ही होता है।

(ग) तमोगुण के प्रभाव के लक्षण :–

जब मनुष्य तमोगुण से प्रभावित हो जाता है तो वह अधिकांश अज्ञान से आवृत रहता हैं और अज्ञान से आवृत रहकर वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद के अधीन हो जाता है। अज्ञानता के कारण मनुष्य अनेक प्रकार के असामाजिक कृत्यों का सम्पादन करता है। तमोगुण से प्रभावित मनुष्यों के द्वारा क्या कार्य प्रमुखता से किये जाते है? उनका कुछ विवरण यहां पर प्रस्तुत किया जा रहा है, जिन्हें देखकर हम मनुष्य के तमोगुणी होने की स्थिति को समझ सकते हैं।

(एक) दूसरों के अहित की इच्छा :–

तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य अपने हित के बारे में कम परन्तु दूसरों के अहित के सम्बंध में अधिक विचार किया करता है। जब दूसरों के अहित करने का विचार मन में तमोगुण के कारण आ जाता है तब ऐसा मनुष्य दूसरों के अहित करने के लिए प्रयत्नशील

भी होता है अर्थात् अहित करने का प्रयास करता है। दूसरों के अहित की अधिकतर इच्छा अपने स्वार्थ के हलीकरण के लिए होती है। यदि हम अपना स्वार्थ हल न करना चाहे तो दूसरों के अहित के बारे में विचार कम होगा और अधिकांशतः दूसरों का अहित भी नहीं होगा। मनुष्य को वस्तुतः अपने हित और कल्याण के विषय में अधिकतर विचार करना चाहिए, क्योंकि अपने हित और कल्याण के विषय में विचार करने से मनुष्य में अपने को सुधारने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है जो उसके भविष्य के लिए सुखद होती है। इसी प्रकार जब हम दूसरों के हित के बारे में विचार करते हैं तो हम स्वयं का अहित ही करते हैं। ऐसा विचार हमें हमारे श्रेय साधन से नीचे गिरा देता है। यदि मनुष्य दूसरों के अहित के बारे में विचार करे, बातचीत करे तो समझना चाहिए कि व्यक्ति तमोगुण से प्रभावित है।

(दो) दूसरों की धन सम्पत्ति छीनने की वृत्ति :–

मनुष्य पर जब तमोगुण का प्रभाव हो जाता है तब वह दूसरों की धन सम्पत्ति को जबरदस्ती छीनने की, किसी न किसी विधि से पाने की प्रबल चेष्टा करता है और उसे इस कार्य में सुख का आभास होता है। उसके अंतःकरण में तमोगुण के प्रभाव से यह विचार बैठ जाता है कि दूसरों के धन को छीनकर किसी न किसी प्रकार लेकर, हम धन और सम्पत्ति से सुख का उपभोग करेंगे। यह मिथ्या अवधारणा तमोगुणी पुरूष में बलवती रहती है और इसी कारण वह दूसरों की सम्पत्ति छीनने का, प्राप्त करने का प्रयास करता है। किसी की सम्पत्ति हो चाहें जबरदस्ती छीनी जाऐ या धोखा देकर हड़पी जाऐ वह सबका सब एक ही रूप है। जो मनुष्य के लिए किसी भी प्रकार लाभप्रद नहीं हो सकती है। जब मनुष्य में दूसरों की धन सम्पत्ति छीनने की प्रवृत्ति और पाने की इच्छा बढ़ जाती है तो इसे तमोगुण का कार्य रूप मानना चाहिए।

(तीन) हिंसा की वृत्ति :–

तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य हिंसक हो जाता है अर्थात् दूसरों को चोट पहुंचाने की, नुकसान करने की बातों पर विचार करता है। आपने लोगों को प्रवृत्ति से हिंसक होते देखा होगा तथा गंभीर क्रोध से आवृत किसी की हत्या करने, मारने, पीटने की बाते करते हुए भी देखा होगा। यह सब भाव मनुष्य में तमोगुण के प्रभाव से उत्पन्न हो जाते हैं और हिंसक प्रवृत्ति तमोगुण का लक्षण है। हिंसक प्रवृत्ति मनुष्य की प्रवृत्ति में परिवर्तन करने लगती है। जब मनुष्य में दूसरों के अहित करने की बातें भावना उत्पन्न हो जाऐ तो निश्चित रूपेण तमोगुण के अधीन मान लेना चाहिए। जब तक मनुष्य में तमोगुण का प्रभाव रहता है तब तक वह अहिंसा के भाव का पालन नहीं कर सकता है। उसका प्रत्येक कार्य और व्यवहार अहिंसा के प्रतिकूल ही रहता है। वह हिंसा के आधार पर अनेक प्रकार की

समस्याओं को हल करने का इच्छुक होता है। इस प्रकार जिस मनुष्य में हिंसा की प्रवृत्ति दिखाई पड़े तो उसको तमोगुणी मान लेना चाहिए।

(चार) अज्ञानतापूर्ण बातचीत :–

क्रमबद्धता से बातचीत करना, बिन्दुवार तथा विषयवार बातचीत करना यह सत्त्वगुण का कार्यरूप है। अक्रमिक तथा अव्यवहारिक बातचीत करना और जो विषय प्रस्तुत नहीं किये जाने चाहिए उस विषय को प्रस्तुत करना तथा अज्ञानतापूर्वक बातचीत करना तमोगुण का कार्यरूप माना जाता है। तमोगुण से आवृत मनुष्य यदि ज्ञानी भी हो तथा शास्त्र में पारंगत भी हो वह अज्ञानतापूर्ण विचार करने का प्रयत्न करता है। आज आपने अनेक पंथ, मत, सम्प्रदाय देखे होंगे। वह सब शास्त्रों में पारंगत विद्वानों ने अधिकांशतः तमोगुण के प्रभाव से उत्पन्न कर दिए हैं। ज्ञान को अनुचित रूप से प्रस्तुत करना, असंगत कहना कुतर्क करके सिद्ध करने का प्रयास करना यह तमोगुण के प्रभाव से होता है। इस प्रकार अज्ञानतापूर्ण बातचीत व्यवहार आदि तमोगुण के प्रभाव से ही होती है और इसे तमोगुण का लक्षण मानना चाहिए।

(पांच) दम्भाचरण और घमंडपूर्ण व्यवहार :–

मनुष्य तमोगुण के प्रभाव से दम्भ से पूर्ण आचरण करता है तथा घमंड से आवृत रहता है। तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य अहंकार से आच्छादित हो जाता है। जो अहंकार से आवृत होकर परिवार और समाज में अनैतिक आचरण करने लगे तो उसे समझना चाहिए कि वह तमोगुण से आवृत हो चुका है। उसकी जो स्थिति नहीं है, उसका वह प्रकटीकरण करता है। दम्भरूपी दोष से आवृत मनुष्य सदैव बढ़चढ़ कर बातें करता है और निषिद्ध कार्य करने को उद्धत होता है। रोके जाने पर वह नहीं मानता है। हमारी जो स्थिति नहीं है, चाहें वह ज्ञान के सम्बंध में हो, चाहें धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, पद के सम्बंध में हो हम यदि उस स्थिति से बढ़कर प्रकटीकरण करते हैं तो इसी को सामान्य भाषा में दंभ का आचरण कहा जाता है। जो वस्तुस्थिति हमारे पास है, उस वस्तु और स्थिति को अपनी मानकर उस पर अभिमान करना घमंड का रूप है। यह दम्भ और घमंड दोनों ही तमोगुण के कार्यरूप हैं और तमोगुण की प्रबलता से प्रकट हो जाते हैं।

(छः) अनैतिक कार्यो का सम्पादन :–

संसार में जितने भी अनैतिक कार्य होते हैं वह सबके सब तमोगुण के कारण ही होते हैं। चोरी, डकैती, हिंसा, कुविचार, हत्या, नशा आदि आदि अनैतिक कार्य जो भी है उन सबको तमोगुण का ही कार्य रूप मानना चाहिए। जो मनुष्य उक्त प्रकार के

असामाजिक कृत्यों का सम्पादन करता है तो उसको तमोगुणी मानना चाहिए और उसके कार्यो को देखकर यह अनुमान लगाना चाहिए कि वह पूरी तरह से तमोगुण से आवृत है। तमोगुण से आवृत मनुष्य नैतिक कार्यो का सम्पादन करना ही छोड़ देता है और वह यह प्रयास करता है कि परिवार और समाज में हमारा वर्चस्व किस प्रकार स्थापित हो। हम किस प्रकार से परिवार और समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करके, भय दिखाकर अपना वर्चस्व स्थापित कर लें और इसके लिए वह अनैतिक कर्मो का आश्रय लेता है। इस प्रकार अनैतिक कार्यो के सम्पादन को तमोगुण का ही कार्यरूप मानना चाहिए।

(सात) प्रतिकूल अर्थ निकलाना :–

जब मनुष्य किसी भी तथ्य का प्रतिकूल अर्थ निकालता है तो उसे निश्चितरूपेण तमोगुण से आवृत समझना चाहिए। मनुष्य बातचीत में, व्यवहार में, अध्ययन में, जब प्रत्येक तथ्य का प्रतिकूल अर्थ निकालने लगता है तो वह अज्ञानतापूर्ण कार्य करता है। चूंकि तमोगुण को अज्ञान का ही प्रतिरूप मानना चाहिए इसलिए अज्ञान के कारण ही प्रतिकूल अर्थ की उत्पत्ति होती है। मनुष्य में जब वास्तविक ज्ञान का प्रकटीकरण होता है तभी अज्ञान का विनाश होता है और जब तक उसमें वास्तविक ज्ञान का प्रकटीकरण नहीं होता तब तक या तो वह संशयग्रस्त रहता है अथवा संशय से अधिक निकृष्ट स्थिति में प्रतिकूल अर्थ निकालता है। संशयग्रस्त रहना रजोगुण का कार्यरूप है और प्रतिकूल अर्थ निकालना तमोगुण का कार्यरूप है। जो मनुष्य बातचीत और व्यवहार में प्रतिकूल अर्थ ग्रहण करे और उसे प्रकट भी करे तो यह निश्चितरूपेण समझ लेना चाहिए कि वह तमोगुण से पूरी तरह आच्छादित हो चुका है।

उपरोक्त प्रकार से सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण के प्रभाव और लक्षणों का वर्णन हुआ। इसके अतिरिक्त भी त्रिगुणों का प्रभाव देखकर मनुष्य के लक्षणों का अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है। यह निश्चित समझे कि प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी गुण के प्रभाव से आवृत रहता है और वैसा ही आचरण करके वैसे ही लक्षण प्रकट करता है जो गुणों के प्रभाव का जानकार है वह किसी भी मनुष्य पर गुणों के प्रभाव का अध्ययन कर लेता है और लक्षण देखकर यह अनुमान लगा लेता है कि यह व्यक्ति किस गुण से आवृत है। प्रत्येक मनुष्य के कार्य और व्यवहार में गुण ही प्रकट होते हैं, इसलिए लक्षण विशेष ही गुण का पर्याय समझना चाहिए।

(10) सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी पुरूषों की परख :–

सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी पुरूषों की पृथक्–पृथक् पहचान और परख होती है। प्रत्येक प्रकार के पुरूष की पहचान के लिए पृथक्–पृथक् गुणों का स्वतः ही प्रकटीकरण रहता है जिसे देखकर हम उस प्रकार के मनुष्य की परख तथा पहचान कर लेते हैं। किस प्रकार के पुरूष की क्या विशिष्ट परख है ? उसे समझ कर हम उस प्रकार के पुरूष की स्वतः ही परख कर लेते हैं। प्रत्येक प्रकार के पुरूष की परख के विशिष्ट स्वरूप का आप अवलोकन कीजिए–

(क) सतोगुणी पुरूष की परख :–

सतोगुणी पुरूष में विशिष्ट गुणों का समावेश रहता है। वह अधिकांशतः शान्तचित रहता है। शान्तभाव से रहता है। कहीं भी रहे उसमें सौम्यता प्रतीत होती है। उसका चलना, बैठना, लेटना, बातचीत करना सभी कुछ सौम्यभाव से ही होता है। अपने में खोया खोया सा रहता है। संसार की गतिविधियों से चेष्टाओं को ग्रहण न करके उनसे अंजान सा प्रतीत हुआ वह आत्मचिंतन में रमा रहता है। संसार क्या है ? इस तथ्य को वह जानता है। इस कारण वह स्वयं क्या है? इस तथ्य को जानने का प्रयत्न करता है। संसार को निश्छल भाव से देखकर उससे कोई अपेक्षा नहीं करता है, क्योंकि संसार में जो कुछ मिलना है वह हमारे कर्मो के अनुसार हमें स्वतः प्राप्त हुआ करता है। वह जगत को और जगत की समस्त क्रियाओं को प्रकृतिजन्य गुणों के प्रभाव से प्रभावित समझता है। मनुष्य कुछ भी नहीं करता है गुण गुण में बरत रहे हैं ऐसा मानता है।

कर्म की वास्तविकता को समझकर प्रत्येक कर्तव्य कर्म के आचरण का और उसके व्यवहार का प्रयास करता है। समाज में लोग नाना प्रकार की बाते करते हैं चूंकि प्रत्येक मनुष्य की बातचीत और व्यवहार गुणों से प्रभावित होता है इसलिए वह उन समस्त सांसारिक विषयों को ग्रहण नहीं करता है और न ही ग्रहण करने की इच्छा रखता है। सतोगुणी मनुष्य के चिंतन का विषय संसार से पृथक् रहता है। वह भीड़भाड़ वाले स्थानों में रहने की इच्छा नहीं करता है वरन् निर्जन प्रदेश में रहने का आकांक्षी होता है। समाज में लोग उससे मिलना चाहते हैं परन्तु वह अधिक लोगों से मिलने की इच्छा नहीं करता है और किसी व्यक्ति से मिलने का निषेध भी नहीं करता है। सात्त्विक प्रधान पुरूष की चेष्टा, गतिविधि शान्त जल की तरह से शान्त रहती है। वह विषाद में नहीं पड़ना चाहता। अर्थात् उसमें विषाद प्रकट ही नहीं होता। यह उसका विशिष्ट लक्षण है।

संसार में अनेक प्रकार के विषय और विवाद हैं। सतोगुणी मनुष्य इन विषयों और विवादों से दूर रहने का आकांक्षी होता है। जगत के लोग किन गतिविधयों में संलग्न हैं, वह उसकी परवाह नहीं करता है और न ही उसके बारे में विचार ही करता है। एकान्त प्रिय और सदैव प्रसन्नचित्त रहने वाला मनुष्य सतोगुणी होता है। सुख ओर दुःख में अर्थात् प्रतिकूलता और अनुकूलता में वह विचलित नहीं होता है। सुख और दुःख को परमात्मा की व्यवस्था के अधीन आने जाने वाला मानकर उसका व्यवहार एकसमान रहता है। इस प्रकार सात्त्विक गुण प्रधान मनुष्य पूरी तरह से शान्त रहता है। जिस मनुष्य में उपरोक्त प्रकार के लक्षण अधिकता से प्रतीत हो तो सत्त्वगुणी मनुष्य मानना चाहिए।

(ख) रजोगुणी मनुष्य की परख :–

रजोगुणी मनुष्य का विशेष लक्षण चंचलता है तथा वह अपने को ज्ञानी सिद्ध करने का प्रयास भी करता है। चंचलता गुण के कारण रजोगुणी मनुष्य असंख्य प्रकार की कामनाओं को करता है और उनकी पूर्ति का आकांक्षी भी होता है। वह बातचीत में बहुत बोलता है तथा विभिन्न प्रकार के तर्क कुतर्क देकर अपने को सही और ज्ञानवान सिद्ध करने का प्रयास करता है। वस्तुतः रजोगुणी मनुष्य संशयग्रस्त रहता है और संशयग्रस्त रहकर वह अनेक प्रकार की सांसारिक अज्ञानतापूर्ण बातचीत करता है। संसार की विविध प्रकार की कामनाऐं व्यक्त करता है और उन कामनाओं की पूर्ति किस प्रकार की जाए? उन उपायों पर अधिक विचार करता है। जिससे कामनाओं की पूर्ति हो उन साधनों पर विचार करना, धन प्राप्ति की चेष्टा करना, सम्पत्ति प्राप्त करने की चेष्टा करना रजोगुण मनुष्य का प्रमुख लक्षण है।

आज के समाज में आपने ऐसे अनेक महानुभावों को देखा होगा जो रात दिन धन सम्पत्ति, पद प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य प्राप्त करने पर विचार करते हैं। उसी सम्बंध में बातचीत करते हैं और उसी के लिए प्रयास करते हैं। इस प्रकार के रजोगुणी मनुष्य अनन्त कामनाओं को लिए हुए जीवनपर्यन्त उनमें फंसे रहते हैं और अंततः पूरी न होने वाली कामनाओं के साथ इस संसार से विदा लेते हैं, क्योंकि कामनाऐं तो अनन्त है। असंख्य हैं, उनको सम्पूर्णता से प्राप्त किया जा पाना संभव नहीं है। रजोगुणी मनुष्य कामनाओं को सम्पूर्णता से प्राप्त करने का प्रयास करता है, पर जो असंख्य है उसे सीमा में नहीं बांधा जा सकता। इसलिए रजोगुणी मनुष्य कामनाओं में रहता है जीता है और अंततः मृत्यु को भी प्राप्त हो जाता है, संसार में रहते हुए उसकी समस्त ऊर्जा सांसारिक कामनाओं में ही नष्ट होती रहती है।

रजोगुण प्रधान मनुष्य विषय भोगों की ओर प्रवृत्त रहता है और विषय भोगों में प्रवृत्त रहने के कारण उसकी अन्ततः दुर्गति होती है। क्योंकि रजोगुण का फल दुख कहा

गया है। वह दुःख ही भोगता है और अंततः इस दुःखरूप संसार से दुःख लेकर ही विदा होता है। रजोगुणी सम्पन्न पुरूष सकाम उपासना में विश्वास करते हैं। यदि वह कोई पूजा पाठ अनुष्ठान करता है तो उसकी दृष्टि उस अनुष्ठान के फल पर होती है। ऐसे मनुष्य यदि किसी की सहायता भी करते हैं तो यह विचार कर लेते हैं कि इस मनुष्य से हमें क्या लाभ हो सकता है? वे बिना लाभ के किसी प्रकार की सहायता नहीं करते हैं। यह रजोगुणी मनुष्य का विशेष लक्षण है। सहायता के पूर्व उसके लाभ पर विचार करना और लाभ न दिखने पर उस व्यक्ति को छोड़ देना रजोगुण प्रधान पुरूष का लक्षण है। रजोगुणी मनुष्य कामनाऐं करता है कामनाओं की पूर्ति का प्रयास करता है और जीवनपर्यन्त कामनाओं में ही फंसा रहता है।

(ग) तमोगुणी पुरूष की परख :–

अधिकांश समय बात बात पर क्रोध करना, बातचीत और व्यवहार में क्रोध प्रकट करना तथा प्रत्येक विषय में अपनी असहमति व्यक्त करके अपनी ही बात को, अपने ही मत को लोगों से मनवाने का प्रयास करना तमोगुणी मनुष्य का एक लक्षण है। तमोगुणी मनुष्य सदैव अपने स्वार्थपरता के लिए बातचीत करते हैं और स्वार्थपरता की पूर्ति के लिए वे किसी सीमा तक नीचे गिर जाते हैं। यदि उनके कार्य की सिद्धि न हो तो वे कार्य की सिद्धि के लिए अनेक प्रकार के अनैतिक उपायों पर विचार करके, उन्हें खोज करके उनका आचरण करते हैं। यह तमोगुणी मनुष्य का विशिष्ट अवगुण होता है। तमोगुणी मनुष्य समाज में पृथक्–पृथक् ही प्रतीत होते हैं। यदि वह निम्नस्तर का होगा, जिस स्थान पर रहेगा वहां पर लड़ाई झगड़ा कलह आदि करके अशान्ति उत्पन्न कर देगा। तमोगुणी मनुष्य यदि मध्यम स्तर का होगा तो वह मनुष्य अपनी स्वार्थी भावना से पूरी तरह से आवृत रहेगा और अपना काम बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील होगा। उसे दूसरों के कार्यो से कोई अर्थ नहीं होता है और स्वयं के कार्य की सिद्धि के लिए अत्यंत निकृष्ट कार्य करने में लज्जा का अनुभव नहीं करता है। इस प्रकार तमोगुणी मनुष्य स्वार्थपरता से पूरी तरह आवृत रहकर अपने हित लाभ पर विचार करता रहता है।

तमोगुणी मनुष्य का हिंसा से विशेष लगाव होता है। बात बात में लड़ना झगड़ना असंतुष्टि का प्रकटीकरण करना यह उसका विशिष्ट अवगुण है। इस अवगुण के चलते उससे अनेक व्यक्तियों से कलह लड़ाई झगड़ा हुआ करता है। वह अपनी बात को मनवाने के लिए प्रयत्न करता है, जो वह समझता है, उसी को सही मानता है तथा वह अधिकांशता सही को गलत ही मानता है और गलत को सही मानता है। जिस मनुष्य में इस प्रकार के विचार हों तथा हिंसादि, दुष्कर्मो, अनैतिक कर्मो की जिसकी प्रवृत्ति हो उसे तमोगुणी मनुष्य

मान लेना चाहिए। तमोगुणी मनुष्य का विशिष्ट लक्षण यह है कि वह निद्रा आलस्य और प्रमाद से आवृत रहता है। कर्तव्य कर्मो का आचरण कदापि नहीं करता है। हिंसा, उदंडता, हठ, आलस्य, प्रमाद, विवाद, अपने मत पर दृढ़ रहना, मिथ्याचारिता, स्वार्थपरता, द्रोह, शत्रुता आदि अवगुण तामसी मनुष्यों में विशेष रूप से पाये जाते हैं। जो व्यक्ति इन अवगुणों से आवृत हो उन मनुष्यों को तमोगुणी मानना चाहिए और उनसे दूर ही रहना चाहिए।

सतोगुणी रजोगुणी तमोगुणी मनुष्यों की परख उपरोक्त प्रकार से हम कर सकते हैं। सतोगुणी मनुष्यों की संगति से लाभ होता है। रजोगुणी मनुष्यों की संगत से न लाभ होता है न हानि होती है और तमोगुणी मनुष्यों की संगति से हानि ही हानि होती है।

(11) सत्त्व, रज, तम त्रिगुण तथा जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था :–

मनुष्य शरीर की तीन अवस्थाऐं होती हैं जिन्हें जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। जागृत अवस्था में मनुष्य जागता है। स्वप्नावस्था में मनुष्य स्वप्न देखता है और सुषुप्ति अवस्था में मनुष्य सोता है। जागृत अवस्था की तुलना सत्त्वगुण से स्वप्नावस्था की तुलना रजोगुण से और सुषुप्ति अवस्था की तुलना तमोगुण से की जाती है। यह तुलना क्यों की जाती है? इसका क्या अभिप्राय और अर्थ है। इस सम्बंध में कुछ विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं क्योंकि अवस्था का गुणों से विशिष्ट सम्बंध है। इसी सम्बंध को समझने के लिए निम्नांकित तथ्य का प्रस्तुतीकरण किया जा रहा है।

(क) सत्त्वगुण और जागृत अवस्था :–

मनुष्य जब जागता है तब संसार के अनेक कार्य करता है। वह जो भी कर्म अनेक प्रकार से करता है वह सबके सब प्रतीत होते हैं। दिखाई पड़ते हैं। व्यक्त रहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि कार्य की प्रतीति होती है। जैसे मनुष्य जागृत अवस्था में कार्य करता है वैसे ही स्वप्न की अवस्था में भी कार्य करता है परन्तु स्वप्नावस्था में कर्म करते हुए प्रतीत तो होता है परन्तु कार्य नहीं होता है। अर्थात् परिणाम अप्रकट रहता है। जैसे हम स्वप्नावस्था में लिखने का कोई कार्य करते हैं तो वह कार्य होते हुए हमें प्रतीत होता है। परन्तु जागने पर वह अपने आप ही गायब हो जाता है क्योंकि कर्म तो वास्तव में होता ही नहीं है। कर्म होने का भ्रम रहता है। भ्रम में हम कर्म करते हैं जागृत अवस्था में ऐसा नहीं होता है। भ्रम नहीं रहता है। वस्तुतः जो कर्म होता है, किया जाता है उसका परिणाम अर्थात् कार्य प्रतीत होता है। यही स्वप्न और जागृत अवस्था का अंतर भी है।

सत्त्वगुण में यही वास्तविकता है। सत्त्वगुण अपनी प्रकाशवृत्ति के कारण सबकुछ अर्थात् जगत की वास्तविकता का अभास कराता है। जैसा जागृत अवस्था में यह स्पष्ट प्रतीति रहती है कि यह जल है, यह पेड़ है, यह मनुष्य है। यह पक्षी है, यह पशु है, यह लाल रंग है, यह काला रंग है। यह रास्ता है, यह खांई है। यह गेहूं है, यह चना है। अर्थात् जगत की समस्त वस्तुओं, स्थितियों, प्राणियों की समझ रहती है। ज्ञान रहता है। वैसे ही सत्त्वगुण प्रकाश स्वरूप है जो जगत की विनाशी प्रकृति का आभास कराता है। जगत में व्यवहार का, कर्तव्य का अर्थात् अच्छे बुरे का वास्तविकता का कल्पना आदि का आभास हो जाता है, प्रतीति हो जाती है। इस कारण ही सत्त्वगुण की तुलना जागृत अवस्था से की जाती है। सात्विक गुण वाला पुरूष ही वस्तुतः संसार में जागता है और जीवन के वास्तविक उद्देश्य मोक्ष को खोजने का प्रयास करता है तथा प्रयत्न करने पर वह मोक्ष नामक तत्त्व को प्राप्त भी कर लेता है।

(ख) रजोगुण और स्वप्नावस्था :–

रजोगुण की तुलना स्वप्नावस्था से की जाती है। स्वप्नावस्था में मनुष्य का सूक्ष्म शरीर का कार्य करता है। तेरह करण कार्य करते हुए प्रतीत होते हैं। जब मनुष्य स्वप्न देखता है तो उसे जागृत अवस्था की प्रतीति होती है। वह आभास करता है कि जो भी कार्य हो रहा है वह सबका जागृत अवस्था की तरह से हो रहा है। स्वप्नावस्था के पश्चात् जब मनुष्य जाग जाता है तो उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है कि वह वास्तव में स्वप्न देख रहा था। सब कुछ स्वप्न में हो रहा था। वास्तविकता में कुछ नहीं है। स्वप्न का परिणाम वास्तविकता नहीं है। कल्पनामात्र सा है। यही स्वप्नावस्था की विशिष्टता है।

जब मनुष्य रजोगुण से आवृत होता है तो वह अपने जीवन में जीवनपर्यन्त बहुत का कर्म करता है। अनेक चेष्टाऐं और क्रियाऐं करता है। जीवनपर्यंत कर्म में लगा हुआ उसे अपना कार्य भी दीखता है। जीवनपर्यन्त कर्म करने के पश्चात् वह समाज में, परिवार में बहुत कुछ कर डालता है। समाज में प्रतिष्ठा, सम्पन्नता तथा परिवार के लिए धन सम्पदा एकत्र कर डालता है। आपने कई लोगों को देखा होगा कि जीवनपर्यन्त कर्म करके वृहद् धन, सम्पत्ति का एकत्रीकरण कर लेते हैं। वृद्धावस्था तक कर्म का प्रभाव रहता है। जीवन पर्यन्त मनुष्य जो भी एकत्र कर पाता है। वह मृत्यु तक साथ रहता है। जैसी मनुष्य की वृत्ति होती है वह सबकुछ एकत्र किया हुआ धन सम्पत्ति स्वप्नवत् हो जाता है। स्वप्न के समान हो जाता है। तभी तो यह कहा जाता है कि यह संसार स्वप्नवत् है। संसार स्वप्नवत् इसी कारण से है कि हम जो भी एकत्र कर पाते हैं वह अंततः खो जाता है, विलीन हो जाता है। स्वप्न के पश्चात् जागने पर वैसा ही होता है। स्वप्न के पश्चात

जागरण में यथार्थ की प्रतीति होती है और संसार से मृत्यु के पश्चात् ही यथार्थ का अनुभव होता है। इस कारण रजोगुण की तुलना स्वप्नावस्था से की जाती है।

(ग) तमोगुण तथा सुषुप्ति अवस्था :–

सुषुप्ति अवस्था अर्थात् निद्राकाल में मनुष्य सो जाता है। सोने में तमोगुण प्रभावी हो जाता है और ऐसी स्थिति में इन्द्रियां मन में, मन बुद्धि में, बुद्धि अहंकार में लीन हो जाती है, विलीन हो जाती है। समाहित हो जाती है। बुद्धि की विकल्प वृत्ति शान्त होने के कारण शरीर शान्त हो जाता है। स्वप्नावस्था और सुषुप्ति अवस्था में बहुत अंतर है। स्वप्नावस्था में स्थूल शरीर की गतिविधि, चेष्टा, गति तो शान्त हो जाती है परन्तु सूक्ष्म शरीर की गतिविधियां बहुत तेजी से जारी रहती हैं। चलती रहती हैं। स्वप्न में भी जागृत की तरह कार्य होता है। गतिविधियां चलती हैं परन्तु वे अस्तित्त्वविहीन रहती हैं। सुषुप्ति अवस्था में सूक्ष्म और स्थूल शरीर की सम्पूर्ण गतिविधियां ही समाप्त हो जाती हैं और यह शरीररूपी उपकरण शान्त हो जाता है तथा बाह्यजगत की और उसकी गतिविधियों की प्रतीति नहीं होती है। तभी तो हम सोने के पश्चात् यह कहते हैं कि अमुक घटना जब हुई तब हम सोये हुए थे और जान नही पाये।

तमोगुण से आवृत मनुष्य की अज्ञानता के कारण जो गतिविधि है वह सुषुप्ति अवस्था की तरह से है। दूसरा तथ्य यह है कि निद्रा तमोगुण का प्रधान लक्षण है। सुषुप्ति अवस्था में कोई कार्य नहीं होता है। तमोगुण के आवृत रहने पर जो कार्य होता है। वह अज्ञानतापूर्ण होता है। इसीलिए निद्रा और अज्ञान की समानता की जाती है। अर्थात् निद्रा और अज्ञान पर्याय माने जाते है। जब कोई कार्य ठीक तरह से नहीं होता है तो यह कहा जाता है क्या तुम कार्य करते समय सो रहे थे ? इसका अर्थ यह है कि सोने में कार्य हो ही नहीं सकता, परन्तु तमोगुण के प्रभाव से जो कार्य होता है वह ठीक न होने के कारण कार्य का न होना कहा जाता है। इस प्रकार तमोगुण और सुषुप्ति अवस्था की तुलना की जाती है। तमोगुण भी अज्ञान के स्वरूप में है क्योंकि वहां पर ज्ञान का अभाव है, बोध का अभाव है। इसी प्रकार सुषुप्तिअवस्था भी अज्ञान का स्वरूप है वहां पर भी बोध और ज्ञान नहीं है। इसलिए तमोगुण को सुषुप्तिअवस्था का पर्याय मान लेना ही उचित होता है। सत्त्व गुण में चेतना विशेष है। रजोगुण में कार्य विशेष है तथा तमोगुण में अज्ञान विशेष है। वैसे ही जागृत अवस्था में चैतन्यता से कर्म होता है। स्वप्नावस्था में कर्म होता है वह अस्तित्त्व विहीन होता है और सुषुप्ति अवस्था में अज्ञान का आवरण होने से शरीर शान्त हो जाता है। मात्र कारण शरीर प्रकट रहता है जो मनुष्य को जागृत अवस्था में लाने का आधार है।

(12) वाणी से सत्त्व, रज, तमोगुण की प्रतीति :–

संत, प्रख्यात् विद्वान, दार्शनिक, चिंतक, विचारक आदि सभी पर गुणों का स्पष्ट प्रभाव रहता है और उस प्रभाव को देखा जा सकता है। अनुभव में लाया जा सकता है कोई भी चाहें कितना भी प्रभावशाली हो वह गुणों के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता है। मात्र त्रिगुणातीत पुरूष ही गुणों के प्रभाव से मुक्त हो जाते हैं। अन्य सभी के व्यवहार, आचरण एवं वाणी के प्रस्तुतीकरण में त्रिगुणों का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस स्थल पर वाणी पर त्रिगुणों का क्या प्रभाव है? इस बारे में विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

(क) तमोगुण से आवृत मनुष्य की वाणी :–

जब कोई वक्ता, व्याख्यानदाता तमोगुण से आवृत होकर व्याख्यान देता है, बोलता है तो उसमें प्रबलता से अहंकार एवं दम्भ के भावों का प्रकटीकरण रहता है। वह अपने वाणी के व्यवहार में यह कहता है कि मैं ऐसा कर दूंगा, मैं वैसा कर दूंगा, यदि वे नहीं मानते हैं तो मैं सख्ती से निपटूंगा। अमुक को बर्बाद कर दूंगा। अथवा नष्ट भ्रष्ट कर दूंगा। अभी वह मेरी ताकत को नहीं जानते हैं। मेरे पास पर्याप्त बल है, मनोबल, जनबल है। जैसे वाक्यों से युक्त शब्दों को प्रयोग करता है। इस प्रकार के शब्द या इससे मिलते जुलते भावों से यदि वक्ता अपने उद्‌गार व्यक्त करता है तो आप समझ लें कि वह वक्ता तमोगुण से आवृत है और तमोगुण के प्रभाव से ऐसे व्याख्यान दे रहा है। तमोगुण से आवृत मनुष्य अपनी सामर्थ्य का निकृष्ट प्रकटीकरण करता है।

(ख) तम,रज, मिश्रित गुण से आवृत मनुष्य की वाणी :–

तम रज मिश्रित गुण के प्रभाव से जो वक्ता अथवा व्याख्यान दाता अपने भाव प्रकट करता है अर्थात् व्याख्यान देता है वह कामनाओं तथा कल्पनाओं के साथ अहंकार एवं अज्ञान से आवृत वाणी प्रकट करता है। उसकी वाणी में कामना एवं अहंकार का मिलाजुला स्वरूप प्रकट होता है जैसे आप लोग यदि हमारा सहयोग करेंगे तो मैं हर प्रकार से आपका सहयोग करूंगा। इसके लिए मुझे चाहें जो कुछ करना पड़े। इस प्रकार का प्रकटीकरण तम और रज मिश्रित गुणों से युक्त मनुष्य करता है। कामना तथा अहंकार के प्रभाव से जो वाणी प्रस्फुटित होती है वह तम रज मिश्रित गुण से युक्त कही जाती है उसमें वक्ता, अज्ञान के कारण सत्य से अत्यंत परे तथ्यों को कहता है तथा उसे काल्पनिक भावों से सिद्ध करने का प्रयास भी करता है। इस प्रकार तम रज मिश्रित गुणों से मिथ्या भाषण एवं कल्पनाशीलता वाणी से प्रकट हो जाती है।

(ग) रजोगुण से आवृत मनुष्य की वाणी :–

जो वक्ता रजोगुण से आवृत रहता है उसकी वाणी में कर्म की प्रधानता रहती है। वह कर्म के आधार पर ही प्रत्येक तथ्य को प्रस्तुत करके उसे सिद्ध करना चाहता है। ऐसे वक्ताओं का यह मानना रहता है कि बिना कर्म के कुछ नहीं हो सकता है तथा वह अनैतिक और नैतिक कर्म में विभेद सम्यक् रूप से नहीं कर सकते हैं। धर्म, अधर्म, कर्तव्य अकर्तव्य में अन्तर न करके ही कर्मो का सम्पादन करते रहते हैं, क्योंकि उनमें संशय विशेष रहता है। उनकी वाणी के समस्त विषय कर्म के येनकेनप्रकारेण सिद्धि पर ही आधारित होती है। नीति अनीति में अंतर को स्थापित न करके कर्म को करने की बात करते हैं। रजोगुणी मनुष्य चूंकि कामना प्रधान होते हैं इस कारण वे कामना की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार के कर्मो का सम्पादन करते हैं और विधि तथा उपायों की व्याख्या भी करते हैं। यही उनके व्याख्यान की विशिष्टता है। धन को संचित करने हेतु जो संस्थाऐं कार्य करती हैं उनमें ऐसे वक्ताओं की प्रधानता होती है। वे अनेक प्रकार से संसार के आकर्षण को दिखाकर धन प्राप्ति के उपायों की व्याख्या करते हैं यह सबके सब रजोगुण प्रधान वाणी के वक्ता होते हैं।

(घ) रज सत्त्व मिश्रित गुण से आवृत मनुष्य की वाणी :–

रज, सत्त्व मिश्रित गुण का वक्ता शास्त्रों के अध्ययन से शास्त्रज्ञान तो रखता है परन्तु उसकी भ्रामक व्याख्या करता है और शास्त्र के सम्बंध में अपना मत प्रकट करने का प्रयास करता है। शास्त्र के मत में अपना मत प्रकट करके वह शास्त्र के मत को ही भ्रामक कर देता है। सात्त्विकगुण के प्रभाव से वह शान्तिपूर्वक अपना मत प्रकट करता है जो उत्तेजना से रहित होता है। सत्त्वगुण मनुष्य में प्रकाश प्रकट कर देता है और रजोगुण कर्म प्रकट करता है। इस कारण सत्त्व और रज का मिश्रित गुण वक्ता शास्त्र की बाते तो करता है परन्तु उसमे ंकर्म की प्रधानता रहती है। यह कर्म की आसक्ति के कारण होता है। शास्त्रों के सम्यक् अर्थ में संदेह रहता है। इसलिए रज और सत्त्व मिश्रित गुण का वक्ता शास्त्र की सम्यक् व्याख्या नहीं कर पाता है। वह शास्त्र को सही आरम्भ तो करता है परन्तु व्याख्यान के उपसंहार को भ्रमपूर्ण कर देता है।

(ङ) सत्त्व गुण से आवृत मनुष्य की वाणी :–

जो वक्ता सत्त्वगुण के प्रभाव प्रभावित रहता है वह शास्त्रों के अध्ययन से सत्त्व के तत्त्व को जान लेता है तथा उसकी सम्यक् व्याख्या मे प्रवीण होता है। सत्त्वगुणी मनुष्य को तत्त्व का दर्शन तो नहीं होता है अर्थात् वह तत्त्वदर्शी नहीं होता है परन्तु तत्त्वदर्शन के

सिद्धान्त को सम्यक्रूपेण जानता है और सैद्धान्तिक रूप से उसकी व्याख्या भी कर देता है, परन्तु तत्त्वदर्शन के प्रयोगात्मक स्वरूप को भली प्रकार से वर्णित करने में अक्षम रहता है। सत्य को जानने के दो स्वरूप हैं एक सैद्धान्तिक और दूसरा व्यवहारिक अर्थात् प्रयोगात्मक। सामान्य मनुष्य सत्य के सैद्धान्तिक स्वरूप को जानने का प्रयास करता है। संशयरहित सत्य के सैद्धान्तिक स्वरूप को जान पाना भी दुर्लभ है, परन्तु सत्त्वगुण से प्रभावित मनुष्य सत्य के सैद्धान्तिक स्वरूप को जान जाता है परन्तु प्रयोगात्मक स्वरूप से वह अनभिज्ञ रहता है, इसलिए शास्त्रों के सिद्धान्तों की सही व्याख्या में निपुण हो जाता है।

(च) सत्त्व तम मिश्रित गुण से आवृत्त मनुष्य की वाणी :–

जो मनुष्य सत्त्व तथा तमगुणों के मिश्रित स्वरूप से आवृत हो जाते हैं वह शास्त्रों के आध्यात्मिक ज्ञान को अर्जित तो कर लेते हैं परन्तु उसको मनगढ़ंत रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं और शास्त्रों के मौलिक सिद्धान्तों को विकृत कर देते हैं। ऐसे मनुष्यों ने ही आज संसार में अनेक मत और पंत प्रचलित कर दिए हैं, जिनमें शास्त्रों को मौलिक सिद्धान्तों को विकृत करके प्रस्तुत किया गया है। ऐसा सत्त्वतम मिश्रित लोग शास्त्रों की बाते तो करते हैं उनके उद्धरण प्रस्तुत करते हैं परन्तु उनकी अपने ढंग से भ्रमपूर्ण व्याख्या करते हैं। अपने मत के समर्थन में शास्त्रों के अंशों को निकाल लेते हैं तथा उनको प्रस्तुत करते हैं, परन्तु वे नहीं जानते हैं कि शास्त्रों में अमुक तथ्य को किस संदर्भ और विषय में कहा गया है। इस प्रकार सत्त्व और तम मिश्रित गुण से युक्त मनुष्यों की वाणी शास्त्रों की व्याख्या मनमाने ढंग से प्रस्तुत करती है और ऐसे मनुष्य तमोगुण से आवृत होने के कारण हठी भी होते हैं और किसी भी तर्क को अपने मत के खंडन में स्वीकार नहीं करते हैं। ऐसे सत्त्वतम मिश्रित लोग सत्य के तत्त्व को नहीं जानते हैं अर्थात् सत्य के तत्त्व से अनभिज्ञ रहकर उसकी व्याख्या करते हैं।

(13) त्रिगुणों का शरीर पर प्रभाव :–

सत्त्वरजतम त्रिगुणों का मानव शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है। शिशु अवस्था का शरीर, बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था तक जाता है। शिशु अवस्था का जो शरीर होता है वह वृद्धावस्था में इतना विकृत हो जाता है? यह प्रकृतिजन्य त्रिगुणों का ही प्रभाव है। प्रकृति निरन्तर गति करती है और उसमें उसके गुण भी निरन्तर गतिशील रहते हैं। जैसे कोई गीला वस्त्र सूर्य की धूप में धीरे–धीरे सूखता है, क्योंकि सूर्य की धूप उस पर प्रभाव डालती है। सूर्य की किरणे उस गीले वस्त्र को प्रभावित करती हैं और उसकी आद्रता को सोख लेती हैं, जिससे उस वस्त्र का गीलापन समाप्त हो जाता है। जब धूप नहीं निकलती है तो वस्त्र इतनी शीघ्र नहीं सूख सकता क्योंकि उसका संयोग सूर्य की

किरणों से नहीं हो पाता है। सूर्य की धूप हमें प्रतीत होती है पर उसका प्रभाव, सोखने की क्रिया हमें प्रतीत नहीं होती है। वस्त्र के सूखने पर उसके सूखा होने का आभास हमें होता है। इसी प्रकार प्रकृति के गुणों का प्रभाव प्रतीत नहीं होता है परन्तु शरीर उसके प्रभाव से धीरे–धीरे जीर्ण–शीर्ण होता जाता है तो परिवर्तन हमें प्रतीत होता है। इस प्रकार प्रकृति के प्रभाव से ही एक शिशु अवस्था का सुन्दर शरीर वृद्धावस्था के कुरूप शरीर में स्वतः ही परिवर्तित हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य पर प्रकृतिजन्य गुणों का प्रभाव अवश्य होता है, क्योंकि हम प्रकृति के अधीन हैं और उसके गुणों के प्रभाव से कार्य करते हैं। सत्त्व, रज, तम गुण शरीर को विकृत कर देते हैं और वृद्धावस्था की ओर ले जाते हैं। हम सभी प्रकृति सम्पर्क में रहते हैं और प्रकृतिजन्य गुणों से प्रभावित रहते हैं इस कारण उसका प्रभाव हम पर पड़ता है। जैसे सूर्य की किरणें तथा ताप के प्रभाव से गीला वस्त्र सूख जाता है वैसे ही प्रकृतिजन्य गुणों के प्रभाव से यह शरीर भी सूख जाता है, विकृत हो जाता है। बाल सफेद हो जाते हैं त्वचा में झुर्रिया पड़ जाती हैं और अनेक प्रकार की विकृतियां स्वतः ही आ जाती हैं। मुखमंडल पर भी विकृति स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है। यह सबका सब प्रकृतिजन्य गुणों का प्रभाव है क्योंकि मनुष्य प्रकृतिस्थ है, अर्थात् प्रकृति में स्थित है।

प्रकृतिजन्य गुणों के प्रभाव से शरीर धीरे–धीरे विकृत हो जाता है। जैसे चावल पकाया जाता है और उसमें पकने की क्रिया धीरे–धीरे होती है। जैसे जैसे चावल उबलता है, वह पकता जाता है और अंततः पक जाता है। वैसे ही प्रकृतिजन्य त्रिगुणों के प्रभाव से यह शरीर पकता है और वृद्धावस्था तक पूरी तरह पककर विकृत हो जाता है। पका हुआ चावल रूकता नहीं। कुछ घंटों में ही वह सड़ने लगता है। वैसे ही वृद्ध शरीर रूकता नहीं है। कुछ सालों में मृत्यु की ओर चल देता है। विनिष्ट होने की क्रिया में सम्मिलित हो जाता है। यह विनिष्टि होने की क्रिया स्वाभाविक है जो स्वतः ही त्रिगुणों के प्रभाव से होती है। हम जहां भी रहते हैं, उस स्थान का जैसा मौसम वातावरण होता है, वैसे ही शरीर प्रभावित होता है। गर्मी होने पर शरीर पर गर्मी का प्रभाव पड़ता है। सर्दी होने पर शरीर पर सर्दी का प्रभाव रहता है, परन्तु त्रिगुणों का प्रभाव शरीर पर प्रत्येक समय प्रत्येक काल में सर्वत्र रहता है। हम चाहें कहीं भी हों, त्रिगुण सर्वत्र व्याप्त हैं और शरीर को निरन्तर प्रभावित करते रहते हैं। प्रत्येक गुण के पृथक्–पृथक् प्रभाव का आप अवलोकन कीजिए।

(क) तमोगुण का शरीर पर प्रभाव :–

तमोगुण का शरीर पर विशेष प्रभाव रहता है। यदि हम तमोगुणी हैं तो तमोगुण अपने प्रभाव से शरीर को पकाता है। जैसे यदि शरीर तेज धूप में रहे तो वह काला हो

जाता है, क्योंकि कड़ी धूप शरीर को बहुत तेजी से प्रभावित करती है। वैसे ही धूप की तरह से तमोगुण शरीर को शीघ्र ही विनिष्ट कर डालता है। इसका कारण है कि तमोगुण का जब शरीर पर प्रभाव रहता है तो उसके प्रभाव से क्रोध, हिंसा, दुष्कर्म, दुराचार, आलस्य प्रमाद, आदि आदि की शरीर में बहुलता होती है और उसके क्रियान्वित होने से पाप की वृद्धि हो जाती है, जिसके कारण यह शरीर नष्ट होना आरम्भ हो जाता है। तमोगुण तेज धूप की तरह से है, जो मनुष्य को शीघ्र ही पका डालता है और दुष्कर्म आदि के परिणाम भी शरीर को विनाश की ओर निश्चित रूप से ले जाते हैं। इसी कारण तमोगुणी मनुष्य शीघ्र ही नष्ट होकर करके इस संसार से विदा लेता है। तमोगुण के प्रभाव से शरीर का तेज, क्रियाशीलता आदि नष्ट हो जाते हैं। आपने बहुधा देखा होगा कि दुष्कर्मी मनुष्य की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है और यह तमोगुण का प्रभाव ही है।

(ख) रजोगुण का शरीर पर प्रभाव :–

रजोगुण का शरीर पर जब प्रभाव रहता है तब मनुष्य कर्मो में आसक्त होकर अनेक प्रकार के सांसारिक कर्मो का आचरण करता है। कामनाओं की प्रबलता के कारण ही मनुष्य शरीर स्वतः ही विभिन्न प्रकार के कर्मो में सक्रिय हो जाता है। राजसी गुणों से मनुष्य में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है और यह उत्पन्न हुई अशान्ति मनुष्य शरीर को स्वतः ही नष्ट कर देती है। अशान्त मनुष्य में स्वयं ही विकृति आ जाती है। रजोगुणी मनुष्य का शरीर भोगवृत्ति प्रधान होता है और वह भोगवृत्ति से तथा अशान्ति के कारण स्वयं ही विनाश की ओर बढ़ता है। जैसे कोई कोई भोजन धीमी आंच से पकता है वैसे ही रजोगुणी मनुष्य का शरीर धीमे–धीमें स्वतः ही रजोगुण की आंच में पककर विकृत हो जाता है। रजोगुणी शरीर सांसारिक ममता के कारण, उसके वियोग तथा वियोग की आशंका के कारण ही विनिष्ट होता जाता है और अंततः समाप्त होता जाता है। रजोगुणी मनुष्य में विशेषता यह प्रवृत्ति होती है कि पौष्टिक आहार से शरीर के विनाश को रोका जा सकता है और वह इसी उपाय से अपने शरीर को पुष्ट रखने की इच्छा करता है। परन्तु विश्व में कहीं ऐसा पौष्टिक आहार नहीं है जो मनुष्य की शरीर की विकृति की प्रक्रिया को नष्ट होने के प्रभाव से रोक सके। हम कोई भी पौष्टिक आहार ग्रहण करें तो भी हमारा शरीर रजोगुण के प्रभाव से नष्ट होता जाता है। रजोगुणी मनुष्य की यह अवधारणा मिथ्या है कि वह पौष्टिक आहार से अपने शरीर की विकृति को रोक लेगा।

(ग) सतोगुण का शरीर पर प्रभाव :–

सत्त्वगुण प्रकाश स्वरूप होने से शरीर को प्रभावित रखता है। सत्त्वगुणी मनुष्य के शरीर में विशेष चमक होती है। यह चमक तथा स्थिरता सत्त्वगुण के प्रभाव से होती है।

सत्त्वगुण भी शरीर को विनिष्ट करता है पर उसके विनाश की क्रिया धीमी होती है। इस कारण सतोगुणी पुरूष की आयु अन्य की अपेक्षाकृत अधिक रहती है और वह स्वस्थ रहकर जीवन जीता है परन्तु सत्त्वगुण शरीर को धीरे–धीरे विनिष्ट करता रहता है। उसमें उतनी तेजी से विकृति नहीं आती है जितनी रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से आती है। जब किसी मनुष्य के शरीर में विशिष्ट सत्त्वगुण प्रकट हो जाता है तो वह अपनी आयु को काफी समय तक रोके रखता है। इसलिए योगी कई सौ वर्षो तक जीवित रहते हुए देखे जाते हैं। इस प्रकार सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्य शरीर में धीरे–धीरे विकृति आती है और वह अंततः शरीर को विनिष्ट कर देती है। सत्त्वगुण मनुष्य शरीर को निरोगी रखने में सहायक होता है, क्योंकि सत्त्वगुण विकाररहित है, इसलिए वह मनुष्य को अनेक प्रकार के विकारों अर्थात् रोगों से दूर रखता है।

(14) त्रिगुण शरीर पर कब प्रभाव नहीं डालते हैं ? :–

प्रकृतिजन्य गुण प्रत्येक शरीर पर प्रभाव डालते हैं परन्तु जब मनुष्य अपनी मन और बुद्धि को परमात्मा में अर्पित कर देता है तो उस काल में प्रकृति प्रकृतिजन्य गुण मानव शरीर पर प्रभाव नहीं डालते हैं। त्रिगुण शरीर को छोड़कर उससे पृथक् हो जाते हैं। यह तथ्य सुनने और समझने में बड़ा विसंगतिपूर्ण और भ्रामक सा लगता है। जब परमात्मा मन तथा बुद्धि में समा जाता है तो त्रिगुण शरीर छोड़ देते हैं अर्थात् यह शरीर त्रिगुणों से अतीत हो जाता है। हम सब पूजा उपासना करते हैं। कुछ क्षणों के लिए उस सर्वव्यापी परमात्मा के प्रति समर्पित रहते हैं। हम यह विचार करें कि क्या हम परमात्मा में अपनी मन तथा बुद्धि प्रत्येक काल तक समर्पित कर सकते हैं? हम संसार के बारे में विचार करते हैं और बुद्धि उस विचार का विनिश्चय करती है। संसार के बारे में विचार तथा विनिश्चय क्या पूर्णतया समाप्त किया जा सकता है? और उस विचार और विनिश्चय में क्या परमात्मा को भरा जा सकता है? तथा बुद्धि के द्वारा पूरी तरह से क्या उसका विनिश्चय किया जा सकता है? यदि आप मन तथा बुद्धि से संसार के विषय को निकाल कर परमात्मा के विषय को भर लेंगे तो त्रिगुण आपके शरीर को प्रभावित नहीं कर सकेंगे।

वाणी से जब परमात्मा के नाम का जप होता है अर्थात् पुनः पुनः परमात्मा के नाम का उच्चारण होता है तब त्रिगुण सत्त्व, रज, तम शान्त हो जाते हैं और सत्त्व का प्रकाश प्रकट होता है। चूंकि सत्त्वगुण प्रकाशयुक्त है और परमात्मा भी प्रकाश के स्वरूप में हैं इसलिए परमात्मा के नाम के जप के प्रभाव से प्रकाश स्वतः ही उत्पन्न होता है। सत्त्वगुण स्वतः ही प्रकट होता है वह शरीर पर अपना प्रभाव डालता है। नाम जप में निरन्तरता आने पर मनुष्य में सत्त्वगुण पुष्ट होता है और मनुष्य सात्त्विक होता जाता है। यह परमात्मा के

नाम जप का प्रभाव है यदि हम मन और बुद्धि में उस परमात्मा को समाहित करने का प्रयास करें और प्रयास के उपरान्त पूरी तरह से उसको समाहित कर लें तो त्रिगुण के प्रभाव को हम काफी सीमा तक रोक सकते हैं। यह तथ्य प्रयोगात्मक है जिसे प्रत्येक साधक को अपनी साधनाकाल में परखना चाहिए।

(15) त्रिगुणों का मन और बुद्धि पर प्रभाव :–

त्रिगुणों का मन तथा बुद्धि पर पूर्ण प्रभाव रहता है। जैसे शरीर पर त्रिगुण का प्रभाव रहता है, वैसे ही मन तथा बुद्धि पर त्रिगुण का प्रभाव रहता है, क्योंकि मन तथा बुद्धि शरीर का ही एक अंग है। शरीर की सम्पूर्ण क्रियाविधि ही मन तथा बुद्धि के निर्देशों पर आधारित है। इस कारण शरीर जो भी कार्य करता है वह मन तथा बुद्धि के निर्देशों के अनुसार ही करता है। त्रिगुण जब मन तथा बुद्धि को प्रभावित करते हैं तो मन तथा बुद्धि त्रिगुण के प्रभाव से कार्य करती हैं और शरीर भी वैसा ही करता है।

मन जब तमोगुण से प्रभावित हो जाता है तब वह अज्ञानतापूर्ण विचारों का स्वतः उत्पादन करता है और अज्ञान के कारण शास्त्रों के प्रतिकूल कर्मों के विषय में विचार करता रहता है। तमोगुण से प्रभावित मन किसी के अहित के बारे विचारता है। दूसरे के धन को जबरदस्ती छीनने की चेष्टा करता है और किसी के प्रति हिंसा का भाव रखता है। तथा यह विचार करता है कि किस प्रकार से दूसरों की सम्पत्ति पर अधिकार किया जाए। तमोगुणी मन विशेष रूप से अहंकार से आवृत हो जाता है तथा कर्तव्य और अकर्तव्य में शिष्टाचार के व्यवहार को भूल जाता है। ऐसी स्थिति में मन मनमाने ढंग से सोचने लगता है। समाज में अनैतिक तथा अनीतिपूर्ण कार्य कैसे हो सकते हैं? यह सब विचार भी रहते है। इतिहास में ऐसे अनेक पुरूषों के बारे वर्णन आता है कि उन्होंने अधर्म अनीति के कारण ही अपना तथा सम्बंधित लोगों का विनाश कर डाला। यह तमोगुण के बारे में विचारण ही था। मन तमोगुण से आवृत होकर जैसा विचार करता है वैसा ही बुद्धि भी विनिश्चय करती है तथा भ्रमपूर्ण निश्चय करके अनेक प्रकार के अवैधानिक कार्यो में व्यस्त रहती है।

मन जब रजोगुण से प्रभावित होता है तो वह कल्पनाशील हो जाता है और कल्पनाशीलता में संसार के बारे में तथा संसार से अपने सम्बंध के विषय में विचार करता है। संसार से उसे क्या क्या प्राप्त हो सकता है? इस पर अधिक विचार चलता है। रजोगुण से प्रभावित मन जागृत अवस्था में बहुत विचार करता है संसार से उसे क्या क्या वस्तुऐं स्थितियां प्राप्त हो सकती है? संसार में उसकी स्थिति कैसे अच्छी हो सकती है ? संसार में उसकी मान्यता कैसे होगी? यह रजोगुण के मन के विचारण के प्रमुख विषय हैं। मन जैसा

विचारण करता है, रजोगुणी बुद्धि वैसी ही स्वीकृति प्रदान करती है। रजोगुणी मन शान्त नहीं रह सकता है क्योंकि वह अनेक प्रकार की सांसारिक कामनाओं में व्यस्त रहता है तथा कामनाओं और इच्छाओं के संजाल में घूमा करता है। अनन्त कामनाऐं उसे शान्त नहीं बैठने देती हैं। यह रजोगुणी मनुष्य के मन और बुद्धि की विशेष स्थिति है।

मन जब सत्त्वगुण से प्रभावित होता है तब उसमें ज्ञान विशेष का प्रकटीकरण होता है तथा सत्य के तथ्य को वह समझता है। अनेक प्रकार के ज्ञानपूर्ण तथ्यों पर विचार करना कि कर्तव्य कर्म क्या है? हमें क्या करना चाहिए? हमें क्या नहीं करना चाहिए? और करने योग्य कर्मो का सम्पादन कैसे हो? तथा न करने योग्य कर्मो का परित्याग कैसे हो? इस विषय पर सत्त्वगुणी मन विचार करता रहता है, यही उसका कार्यरूप है। जब मनुष्य का मन सत्त्वगुण से प्रभावित हो जाता है तो बुद्धि भी सत्त्वगुण का आश्रय ग्रहण कर लेती हैं और ऐसी स्थिति में वह कर्तव्य का, धर्म का, नैतिकता का, आचरण और व्यवहार करती है। यह सत्त्वगुण के प्रभाव का विशिष्ट प्रदर्शन है जो मन तथा बुद्धि से प्रकट होता है। इस प्रकार मन तथा बुद्धि जिस जिस गुणों से प्रभावित रहती है उस उस गुणों के प्रभाव के आधार पर ही कार्य करती है उससे पृथक् नहीं हो सकती है। मन तथा बुद्धि पर त्रिगुणों का स्पष्ट प्रभाव निरन्तर देखा जा सकता है। एक सामान्य व्यक्ति मन तथा बुद्धि पर पड़ने वाले त्रिगुणों के प्रभाव को नहीं जानता है परन्तु एक साधक मनुष्य मन तथा बुद्धि पर पड़ने वाले त्रिगुणों के प्रभाव को स्पष्ट रूप से जानता है और वह सत्त्वगुण के प्रभाव को ग्रहण करता है तथा रज और तमगुण के प्रभाव को छोड़ने की इच्छा करता है।

(16) त्रिगुणों में मृत्यु के परिणाम :–

मनुष्य जब प्रत्येक काल अर्थात् समय में किसी न किसी गुण से प्रभावित रहता है तब मृत्युकाल में भी अवश्य ही प्रभावित रहता है। ऐसा नहीं हो सकता है कि किसी काल में मनुष्य में किसी न किसी गुण से प्रभावित न हो। मृत्युकाल में जब मनुष्य सात्त्विकगुण के प्रभाव से मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसकी पृथक् गति होती है और रज तथा तम गुणों के प्रभाव में मनुष्य की पृथक् स्थिति होती है। इन तीनों स्थितियों का क्रमशः अवलोकन कीजिए।

(क) सत्त्वगुण की अधिकता में मृत्यु होने से मनुष्य की गति :–

सत्त्वगुण की वृद्धि में जब मनुष्य की मृत्यु होती है तो उर्ध्वलोकों में चला जाता है। सात्त्विकगुण की वृद्धि मनुष्य में कैसे होती है? इस तथ्य को समझना चाहिए। मनुष्य रजो गुण तथा तमोगुण के जो कार्य हैं उनको जब त्याग देता है तथा शुभ कर्मो का आचरण

करता है तब वह सत्त्वगुण के अधीन रहता है। सात्त्विकगुणों के अधीन जिसने जीवन पर्यन्त आचरण किये हैं तो अंतकाल में भी सात्त्विकगुण का प्रभाव शरीर पर रहता है। यह नियम नहीं है कि हम जीवनपर्यन्त रजोगुणी तथा तमोगुणी स्वभाव के रहे और अंत काल में सात्त्विक गुणों के प्रभाव में आ जाऐ। इसके अपवाद हो सकते हैं परन्तु वे दुर्लभ हैं। सामान्य नियम यही है कि जिसने जीवनपर्यन्त जिस गुण का व्यवहार और आचरण किया है, जिससे वह आवृत रहा है वैसा ही गुण मृत्युकाल में स्वतः ही प्रकट हो जाता है। यही निश्चित सिद्धान्त है। सत्त्वगुण की वृद्धि में जब मनुष्य की मृत्यु होती है तो वह उर्ध्वलोकों में अर्थात् ऊपर के लोकों में जाता है। सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्य को पुण्यों की प्राप्ति होती है और पुण्यों को भोगने के लिए उसे स्वर्गदाकि लोकों में जाना पड़ता है। शास्त्रों में ऐसा वर्णन आता है स्वर्गादिक लोकों में सुख ही सुख है। वहां पर दुख की प्रतीति और आभास नहीं होता है। पुण्यों के परिणाम से सात्त्विक मनुष्य को सुख प्राप्त होता है। सुख भोगने से उसी प्रकार पुण्य समाप्त हो जाते हैं जैसे संचित धन को निरन्तर खर्च करने पर धन समाप्त होता जाता है। उसी प्रकार पुण्यों के समाप्त होने पर वह मनुष्य पुनः पृथ्वीलोक पर जन्म लेता है। इस प्रकार सात्त्विकगुण की वृद्धि में मरने पर मनुष्य स्वर्गादिक लोकों को स्वतः ही पहुंच जाता है।

(ख) रजोगुण की वृद्धि में मृत्यु से पुनः मनुष्य लोक में आता है :–

जब मृत्युकाल में रजोगुण की वृद्धि होती है तो मनुष्य पुनः इसी मनुष्यलोक में जन्म ले लेता है। मनुष्य जीवनपर्यन्त कर्मो में आसक्त रहकर रजोगुण के प्रभाव से कर्म करता रहता है। रजोगुण मनुष्य को विभिन्न सांसारिक कर्मो में व्यस्त रखता है। संसार में कर्म करने से कर्मो की आसक्ति बढ़ती है। जैसे हम कर्म करते हैं तो सांसारिक वस्तुओं की हमें उपलब्धि होती जाती है। सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति ही मनुष्य को और अधिक कर्म करने को प्रेरित करती है। यह भावना निरन्तर बढ़ती रहती है यही कर्म की आसक्ति है। इस प्रकार की कर्मासक्ति में जब मनुष्य एक बार फंस जाता है तो वह जीवनपर्यन्त उसमें फंसा रहता है। कर्मासक्ति से मनुष्य में रजोगुण की वृद्धि रहती है अथवा यह कहें कि रजोगुण के कारण कर्म में आसक्ति रहती है। यह एक ही तथ्य जिससे रजोगुण में शरीर में रहता है।

रजोगुण में एक बार फंस जाने पर मनुष्य मृत्युकाल तक उसमें फंसा रहता है। रजोगुण की वृद्धि में अंततः उसकी मृत्यु हो जाती है और कर्मासक्ति के कारण पुनः इसी लोक में जन्म लेता है। मनुष्यलोक में उसका जन्म पूर्वकृत कर्मो के आधार पर परिवार में होता है। कर्मासक्ति से जब मनुष्य नीति और अनीति पर विचार करके चलता है तो उसका

जन्म उचित परिवार में होता है और कर्मासक्ति के कारण यदि नीति, अनीति, धर्म, अधर्म पर विचार न करके कर्म करता है तो इस प्रकार की अनैतिक कर्मासक्ति से उसे निकृष्ट परिवार में जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार रजोगुण की वृद्धि मनुष्य को पुनः इस लोक में वापस ले आती है।

(ग) तमोगुण की वृद्धि में मृत्यु से अधोगति होती है :–

तमोगुण की वृद्धि से मनुष्य की मृत्यु का परिणाम अधोगति है। अधोगति दो प्रकार की होती है। एक में मनुष्य नरकादिक योनियों में नरकों के कष्ट को भोगने के लिए जाता है और दूसरे में कीट पशु–पक्षी, आदि योनियों में जन्म ले लेता है। तमोगुणी मनुष्य को किस प्रकार की स्थिति प्राप्त होगी? अर्थात् उसकी अधोगति क्या होगी है? इसका विनिश्चय भी परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार ही होता है। इस प्रकार दो प्रकार अधोगति का वर्णन शास्त्रों में प्राप्त होता है। तमोगुण में मृत्यु होने पर मनुष्य की अधोगति होना निश्चित है, उसमे कोई भी अन्य कोई विकल्प नहीं है।

अनेक नरकों का वर्णन शास्त्रों में आता है, जिसमें जीव अपने कर्मो के अनुसार कष्टों को भोगता है। दुष्कर्मो के अनेकों प्रकार हैं। जैसे किसी की हत्या कर देना, किसी को मारना पीटना प्रताड़ित करना, किसी की धन सम्पत्ति छीन लेना, जीव हत्या करना मदिरा मांस का भक्षण करना आदि आदि। प्रत्येक प्रकार के दुष्कर्म के लिए पृथक् पृथक् प्रकार के दंड अर्थात् नरक की व्यवस्था परमात्मा द्वारा की गई है। जो जिस प्रकार का दुष्कर्म करता है उसे उसी प्रकार का नरक यातना हेतु प्राप्त होता है। यही एक प्रकार की अधोगति है। दूसरी प्रकार की अधोगति कीट पशु–पक्षी आदि योनियों के रूप में जन्म लेना है। मनुष्य जब दुष्कर्म करता है और तमोगुण की अधिकता में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उसे या तो कीड़ा बनना पड़ता है अथवा पशु या पक्षी बनना पड़ता है। मनुष्य यदि कीड़ा, पशु पक्षी बन जावे तो यह भी एक प्रकार की दुर्गति ही है। इसको भी अधोगति कहते है।

इस प्रकार सत्त्वगुण में जब मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसे सुख प्राप्त होता है। रजोगुण में जब मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसे दुःख प्राप्त होता है और तमोगुण में मृत्यु को प्राप्त होने पर उसे अधोगति प्राप्त होती है और एक अनिश्चित समय तक नारकीय योनियों में भ्रमण करना पड़ता है।

(17) त्रिगुणों के फल (परिणाम) :–

त्रिगुणों अर्थात् सत्त्व, रज, तम के पृथक्–पृथक् परिणाम है। सात्त्विक कर्म का परिणाम शुभ कहा जाता है। राजसी कर्म का परिणाम दुःख कहा जाता है और तामसी कर्मो का परिणाम अज्ञान कहा जाता है। मनुष्य या तो सात्त्विक कर्म करता है या राजसी और तामसी कर्म करता है। तीन कर्मो में कोई कर्म न करे यह नहीं हो सकता। इसलिए तीनों गुणों के जो पृथक्–पृथक् परिणाम हैं, वह भी उसे भुगतने पड़ते हैं। इन तीनों गुणों के परिणामें के स्वरूप का यहां उल्लेख किया जा रहा है।

(क) सात्त्विक कर्म का फल सुख है :–

सात्त्विकगुण से प्रभावित मनुष्य कर्म करता है तो उसे सात्त्विक कर्म कहा जाता है। सात्त्विक कर्म का अभिप्राय यह है कि निष्कामभाव से कर्म करना, शास्त्रानुकूल धर्म का आचरण करना, भगवान का भजन करना तथा समाज के लोगों की सहायता करना। इन सब कर्मो में उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ कर्म भगवान का भजन है जिसका परिणाम अत्यंत सुखद होता है। श्रेष्ठकर्म जैसे निष्काम भाव से सेवा, शास्त्रसम्मत धर्म का आचरण, समाज सेवा भी अच्छे कर्म हैं, जिससे मनुष्य को पुण्यों की प्राप्ति होती है। सात्त्विक मनुष्य परमात्मा के कर्म सिद्धान्त को समझ लेता है, जिस कारण वह शुभ कर्मो का आचरण करता है। शुभ कर्मो के आचरण का परिणाम शुभ होता है जिसे पुण्य कहा जाता है। पुण्य का परिणाम सुख होता है। यह कर्म व्यवस्था है, जिसके अधीन हम सभी को शुभ परिणाम स्वतः प्राप्त होते रहते हैं। निष्काम भाव से जब हम किसी की सेवा करते हैं तथा धर्माचरण से किसी को सुख पहुंचाते हैं तो हम दूसरों को सुख पहुंचाने के कारण हमें स्वतः ही सुख प्राप्त होता है। यह निश्चित सिद्धान्त है। सुख देने के बदले हमें सुख ही मिलता है। सुख ही प्राप्त होता है। ऐसे संयोग बनते हैं अथवा परमात्मा की कर्म व्यवस्था में ऐसे संयोग बना दिए जाते हैं जिसे स्वतः ही सुख की उपलब्धि होती जाती है। इस प्रकार सात्त्विक गुण का फल अर्थात् परिणाम सुख ही होता है।

(ख) राजसी कर्म का फल दुःख है :–

मनुष्य जब राजसी कर्म करता है तो उसका परिणाम दुःख ही दुख होता है। राजस कर्म का अंततः फल दुख ही कहा गया है। रजोगुण से प्रभावित मनुष्य धन, सम्पत्ति, पद, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा एकत्र कर सकता है और वह प्रयास से एकत्र कर भी लेता है। जब मनुष्य रजोगुण के प्रभाव से कर्म में आसक्त होकर उक्त की प्राप्ति हेतु कर्म करता है तो उसे कर्म के परिणाम में उक्त वस्तुऐं धन, सम्पत्ति, पद, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त हो जाती हैं।

धन प्राप्त होने पर प्रसन्नता होती है और उसके विनाश से दुःख होता है। सम्पत्ति की प्राप्ति से सुख का आभास होता है और उसके विपाश से दुःख की अनुभूति होती है। पद की प्राप्ति से सुख का आभास होता है और पद के जाने से दुःख का आभास होता है। ऐश्वर्य के मिलने से सुख का आभास होता है। ऐश्वर्य के जाने से दुःख होता है। प्रतिष्ठा प्राप्ति में प्रसन्नता रहती है और प्रतिष्ठा के विनाश से दुःख का होना स्वाभाविक है। इस प्रकार राजस का फल दुःख कहा जाता है।

साधारणतया मनुष्य जीवनपर्यन्त कर्म करता है और संसार में बहुत सा धन साम्पदा, ऐश्वर्य, ख्याति, कीर्ति एकत्र कर लेता है, परन्तु जब यह वस्तुऐं जाती हैं अर्थात् समाप्त होती हैं तब दुःख का होना स्वाभाविक है। इन वस्तुओं का जाना अर्थात् वियोग होना अनिवार्य हैं, क्योंकि संयोग से ही वियोग का उद्भव होता है। चाहें उक्त वस्तुऐं और स्थितियां मृत्यु के पूर्व जाऐ अथवा मृत्यु के पश्चात् जाऐ। मृत्यु के पूर्व जाने पर हम अपने सामने ही वस्तुओं को विनिष्ट होता देख बहुत दुःखी होते हैं और मृत्युकाल में मृत्यु को समीप आया देख अथवा वृद्धावस्था में भी उसका ह्रास देखकर, वियोग देखकर दुख होता है। एक वृद्ध मनुष्य अपने आलीशान भवन को देखकर यह विचार करता है कि यह भवन हमसे छूट जाएगा। इस कारण वह यह विचार करके दुःखी होता है। यही विचार प्रत्येक वस्तु और स्थिति के बारे में होता है। इसी कारण राजस कर्म का फल दुःख कहा गया है।

(ग) तामस का फल अज्ञान है :–

तमोगुण के कार्य का पहले ही वर्णन किया गया है। तमोगुण से आवृत मनुष्य का विवेक नष्ट हो जाता है और विवेक के नष्ट होने से वह मनमाना आचरण करता है। हिंसा, लोगों की धन सम्पत्ति छीनने, समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करने का कार्य प्रमुखता से करता है। जब किसी के मन में हिंसा का भाव, लोगों की धन सम्पत्ति छीनने का भाव समाज में अव्यवस्था फैलाने की इच्छा जागृत हो जाती है, तो इस जागृत इच्छा के अधीन वह कार्य करे, तो उसे यह समझना चाहिए कि वह मनुष्य तमोगुण से आवृत होकर कर्म कर रहा है। तमोगुण मनुष्य में उसके ज्ञान को आच्छादित कर देता है, जिससे हिंसा, दूसरों की पीड़ा देने तथा दूसरों की वस्तुओं को छीनने में दोष का दर्शन नहीं होता है। उक्त असामाजिक कार्यो को तमोगुणी मनुष्य उचित मान कर उनका सम्पादन करते हैं इसी को अज्ञान कहा जाता है। जबकि सत्त्वगुण की प्रधानता से वह ज्ञान प्रकट हो जाता है जिससे शुभ अशुभ कर्मो में अंतर की समझ आती है तथा अशुभ कर्मो का परित्याग होता है और शुभ का आचरण होता है।

तमोगुण को अज्ञान का स्वरूप ही समझना चाहिए क्योंकि अज्ञानता के आने पर ही मनुष्य दुष्कर्म करता है। हिंसा आदि कर्मो का सम्पादन करता है, जिससे उसका पतन हो जाता है। यही उसकी दुर्गति है। यह दुष्कर्मो के परिणाम भी मनुष्य को अंधकार में ले जाते हैं। अज्ञान ही उसे इस लोक में भी कष्ट प्रदान करता है। इस कारण वह इस लोक में भी दुःखी रहता है तथा मरने के पश्चात् भी अनेक प्रकार के नरकों मे उसे कष्ट ही भोगना पड़ता है। नरक के साथ उसे कीड़ा, पशु, पक्षी आदि योनियों में भी भ्रमण करना पड़ता है यही तमोगुण के फल का अज्ञान कहते हैं जिसमें ज्ञान का लोप रहता है। इस प्रकार त्रिगुणों में सात्त्विक का फल सुख कहा जाता है। राजसी कर्म का फल दुःख कहा जाता है और तामसी कर्म का फल अज्ञान और अंधकार के रूप में पतन कहा जाता है। इस कारण यदि हमें सुख चाहिए तो सात्त्विक कर्म ही करने चाहिए। दुःख की आकांक्षा हो तो राजस कर्म करने चाहिए और पतन की इच्छा हो तो तामसी कर्म, हिंसादि कर्मो का सम्पादन करना चाहिए।

(18) तीन प्रकार के यज्ञ, दान, तप, कर्म :–

यज्ञ, दान, तप यह तीन कर्म मनुष्य के लिए कर्तव्य कर्म कहे जाते हैं। इनका पालन करना प्रत्येक मनुष्य का अवश्यमेव कर्तव्य है। इस कारण तीनों कर्तव्य कर्मो को और उनके तीनों स्वरूपों को समझ लेना आवश्यक है। यज्ञ, दान तथा तप कर्म के तीनों प्रकारों का क्रमशः अवलोकन कीजिए।

(एक) सात्त्विक यज्ञ :–

सात्त्विक यज्ञ की तीन विशेषताऐं होती हैं जिससे सात्त्विक यज्ञ का विनिश्चय होता है। प्रथम तो मन में यह निश्चय करना कि यज्ञ करना अनिवार्य कर्म है और कर्तव्य कर्म भी है। इस प्रकार की अवधारणा का मन में विनिश्चय कर लेना चाहिए और उसे निर्धारित भी कर लेना चाहिए। यदि मन में यह निर्धारण नहीं है कि यज्ञ करना अनिवार्य कर्म है तो यज्ञ सात्त्विक नहीं हो सकता है। इस कारण यज्ञ को कर्तव्य कर्म मानना पहली शर्त है। दूसरी सात्त्विक यज्ञ की यह शर्त है कि यज्ञ में फल की इच्छा का परित्याग रहना चाहिए अर्थात् फल इच्छा करने से यज्ञ सात्त्विक नहीं रह जाता है। फल की इच्छा करने से यज्ञ के स्वरूप में स्वतः ही परिवर्तन हो जाता है। सात्त्विक यज्ञ का तीसरा महत्वपूर्ण तथ्य शास्त्रविधि का अनुपालन करना है। प्रत्येक यज्ञ की शास्त्रविधि का उल्लेख है चाहें वह यज्ञ वैदिक हो अथवा पौराणिक हो। प्रत्येक के सम्पादन का विनिश्चय वेदों और शास्त्रों में किया गया है। इसलिए शास्त्रविधि का परित्याग कभी भी यज्ञादिक कर्मो में नहीं करना चाहिए। उक्त तीनों प्रकार की शर्तो का यदि पालन किया जाऐ तो यज्ञ सात्त्विक हो जाता

है। यज्ञ कर्तव्य कर्म है उसमें हमें फल की इच्छा का त्याग रखना चाहिए तथा शास्त्रविधि के अनुसार यज्ञ का सम्पादन करना चाहिए।

(दो) राजस यज्ञ :–

राजस यज्ञ की दो विशेषताऐं हैं। एक फल अर्थात् परिणाम की आकांक्षा को लेकर राजस यज्ञ का सम्पादन होता है तथा दूसरा दम्भ के आचरण के लिए होता है। जब कोई भी रजोगुणी मनुष्य यह तथ्य मन में विचार कर लेता है कि हमको अमुक कार्य की सिद्धि करनी है और उस कार्य की सिद्धि के लिए यज्ञ का सम्पादन करता है अथवा करवाता है तो चाहें सिद्धि मिले अथवा न मिले यह विचार आने पर ही यज्ञ का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है और ऐसे यज्ञ को राजसी यज्ञ कहते है। आज अधिकांश यज्ञ धन, सम्पत्ति, पुत्र, पद, कीर्ति, ऐश्वर्य आदि को दृष्टिगत् रखकर किये जा रहे हैं। इस कारण वे सबके सब राजसी होते हैं। इस प्रकार के यज्ञों के सम्पादन में समाज में यह दिखावा करने का भी अभिप्राय रहता है कि हम यज्ञ का सम्पादन कर रहे हैं। इस भाव की प्रबलता में भी जो यज्ञ हम सम्पादित करते हैं उसका स्वरूप राजसी हो जाता है।

(तीन) तामसी यज्ञ :–

तामसी यज्ञ के पांच लक्षण कहे गए हैं। तामस यज्ञ में प्रथम तो श्रद्धा का अभाव रहता है। अर्थात् श्रद्धा के अभाव में ही यज्ञ का सम्पादन होता है। श्रद्धा के अभाव का अर्थ है कि तामसी मनुष्य में यज्ञ के प्रति आस्था नहीं रहती है। इसका अभिप्राय यह है कि यज्ञ से कोई लाभ होगा अथवा नहीं होगा यह तथ्य मन में प्रबलता से रहता है। इस कारण ऐसे मनुष्य यज्ञ करते हैं तो यह यज्ञ बिना श्रद्धा के होता है और उसे तामसी यज्ञ माना जाता है। तामसी यज्ञ का दूसरा लक्षण है कि इसमें दान का भी अभाव रहता है। यज्ञ तो किया जाता है परन्तु उसमें दान नहीं दिया जाता है। तीसरा लक्षण है कि शास्त्र की विधि से यज्ञ का सम्पादन नहीं होता है अर्थात् मनमाने ढंग से यज्ञ का सम्पादन किया जाता है। इस कारण शास्त्रविधि की विहीनता से यज्ञ के अनुष्ठान के कारण यज्ञ का स्वरूप तामसी हो जाता है। तामसी यज्ञ में मंत्रों का उच्चारण नहीं होता है, क्योंकि अनुष्ठान करने वाले मंत्रों के बारे में परिचित ही नहीं होते हैं। तामसी यज्ञ का पांचवा लक्षण है कि उसमें दक्षिणा आदि नहीं दी जाती है। इस प्रकार उपरोक्त पांच लक्षण जिस यज्ञ में प्रतीत हों तो उसे तामसी यज्ञ समझ लेना चाहिए।

(चार) मानसिक तप :–

मानसिक तप के प्रमुख पांच भाव हैं। पहला भाव है मन में निरन्तर प्रसन्नता का रहना। अनुकूल वस्तुओं, सुहृदों और अनुकूल परिस्थितियों की प्राप्ति से मन में जो प्रसन्नता

का भाव आता है वह वास्तविक प्रसन्नता का प्रकार नहीं है, क्योंकि जब हमें अनुकूल स्थितियां नहीं प्राप्त होती हैं और सुहृदों का वियोग होता है तो दुःख का आभास होता है। इसलिए यह एक प्रकार उपार्जित प्रसन्नता है, जो समय के साथ विलुप्त हो सकती है। सत्त्वगुण की वृद्धि से मन में अनायास ही प्रसन्नता का भाव रहता है। यह प्रसन्नता ही मानसिक तप का एक प्रकार है। दूसरा भाव सौम्यता का है। जब मनुष्य अन्य मनुष्यों से इस प्रकार का आचरण और व्यवहार करता है जिससे कोई उद्विग्न न हो, वह भी किसी से उद्वित न हो, तो इस प्रकार के व्यवहार को सौम्य व्यवहार कहा जाता है। यह स्थिति और भाव कठिनता से प्राप्त होने वाला है तथा मानसिक तप का एक अंग है। मानसिक तप का तीसरा भाव है मन को संयमित कर लेना है। प्रमथनशील चंचल मन जब संयमित हो जाता है तो यह मानसिक तप कहा जाता है। जब तक मन असंयमित रहता है तब तक मानसिक तप आरम्भ ही नहीं होता है। मानसिक तप का चौथा भाव है मौन। मौन का अभिप्राय वाणी को शान्त कर लेना ही नहीं है वरन् अंतःकरण को भी शान्त कर लेना मौन का पर्याय कहा जाता है। वाणी की शान्ति से अंतःकरण शान्त नहीं होता है। पांचवा भाव है भावों की शुद्धता। चूंकि भावों की उत्पत्ति मन से होती है, इस कारण भावों को शुद्ध कर लेना भी मानसिक तक कहा जाता है। इस प्रकार उक्त पांचों भावों के प्रकट हो जाने पर मानसिक तप का सम्पादन होता है।

(पांच) वाचिक तप :–

वाणी सम्बंधी तप के भी पांच भाव हैं जिन्हें हमें स्पष्ट रूप से समझना चाहिए।

1–वाणी का स्वाध्याय अर्थात् परमात्मा के नाम का निरन्तर जप

2–परमात्मा के नाम के जप का अभ्यास करना

3–प्रिय तथा कल्याणकारक वचनों को कहना

4–जो सत्य की सीमा में आता हो ऐसे यथार्थ वचन बोलना और

5–किसी को परेशान न करने वाले वचन कहना।

वाचिक तप अर्थात् वाणी सम्बंधी तप का विशिष्ट भाव भगवान के नाम के जप में है जिसके अभ्यास से निरन्तरता आती है और निरन्तरता आने पर संशय का विनाश होकर सत्य का आभास और अभ्यास में क्रमबद्धता आ जाती है तथा परमात्मा के नाम का जप स्वतः होता रहता है। यह वाचिक तप की विशिष्टता है। चूंकि यह व्यवहारिक तथ्य है इसलिए इसकी अनुभूति साधक को करना चाहिए। वाचिक तप की परिभाषा में भगवान के

नाम का जप स्वतः होने लगता है तो यह स्थिति विशिष्ट हो जाती है स्वशन क्रिया की तरह से जप भी निरन्तर होता है तो इस प्रकार का तप वाचिक तप कहलाता है।

(छः) कायिक तप :–

कायिक अर्थात् शारीरिक तप के भी पांच तथ्य प्रमुख रूप से कहे जाते हैं। **1–देवताओं का, शम, दम, तप आदि से युक्त ब्राह्मण का, गुरूओं और आचार्यो का तत्त्वदर्शी महापुरूषों का विधि पूर्वक पूजन करना ।**

2– बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि का रहना।

3– मन वचन कर्म से सहज व्यवहार करना ।

4– स्मरण कीर्तन केलि आदि आठ प्रकार के ब्रम्हचर्य का पालन करना।

5– अहिंसा व्रत का विधिवत पालन करना।

यह सबके सब शारीरिक तप के रूप हैं। उपर्युक्त पांच प्रकार के भाव पुष्ट होकर जब कार्यान्वित होते हैं तो शारीरिक तप की यह पराकाष्ठा कही जाती है। सामान्य रूप से मनुष्य देवताओं का, आचार्यो का, तत्त्वदर्शी महापुरूषों का सम्मान और पूजन नहीं करता है। बाह्य तथा आन्तरिक रूप से शुद्ध नहीं रहता है। मन, वचन, कर्म से सामान्य व्यवहार भी नहीं करता है तथा ब्रह्मचर्य और अहिंसा आदि व्रतों का पालन भी नहीं करता है। इसलिए शारीरिक तप का सम्पादन भी नहीं होता है। प्रत्येक मानसिक वाचिक और कायिक तप के तीन प्रकार भी कहे जाते हैं। जो गुणों के आधार पर होते रहते हैं। चूंकि इस प्रकरण में गुणों के सम्बंध में विशिष्ट चर्चा हो रही है इसलिए इन तपों के सम्बंध में चर्चा करना भी आवश्यक है।

(सात) सात्त्विक तप :–

उपरोक्त प्रकार से जिन तीन प्रकार के तपों का उल्लेख किया गया हैं। उनका अनुपालन अतिशय श्रद्धा से होता है तथा उसमें फल की इच्छा का भाव नहीं रहता है तब उपरोक्त प्रकार के तप सात्त्विक तप कहे जाते हैं। मानसिक, वाचिक तथा कायिक तपों में जिन जिन पांच भावों का उल्लेख पूर्वोक्त प्रकार से हुआ है उनमें फल की इच्छा का त्याग रखना चाहिए तथा उनके अनुपालन में श्रद्धा भी रखनी चाहिए। सात्त्विक तप की यही विशेषता है। यदि श्रद्धा का भाव नहीं रहता है और फलेच्छा का भाव रहता है तो उपरोक्त प्रकार के तप सात्त्विक तप की श्रेणी में नहीं आते हैं।

(आठ) राजस तप :–

उक्त तीनों प्रकार के तपों में 15 प्रकार के भावों का वर्णन किया गया है। उक्त पंद्रह प्रकार के भावों में यदि सत्कार और मान प्राप्त करने का भाव रहे तथा सम्मान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट हो जाए तो यह तप राजसी तप की श्रेणी में स्वतः ही आ जाते हैं और वह तपश्चर्या अपने आप राजसी हो जाती है। सत्कार, सम्मान तथा पूजा के भाव से जो तीन प्रकार के तप होते हैं उनमें दंभाचरण का भाव रहता है। इस कारण राजसी तप का कोई भी परिणाम हमें प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि राजसी तप में सत्कार, सम्मान तथा पूजा के भाव के रहने से हमें उक्त सुखों का कोई लाभ प्राप्त नही होता है। इसलिए भावों के परिवर्तन से सात्त्विक तप राजसी तप हो जाता है।

(नौ) तामसी तप :–

उपरोक्त मानसिक, शारीरिक, तथा वाचिक तप के 15 तथ्यों में यदि 1– मूर्खता का भाव आ जाए 2 –हठवादिता प्रकट हो जाए 3–दूसरों के अहित का भाव आ जाए तथा अपने को कष्ट देने के भाव से उनका कार्यान्वयन किया जाए तो यह तप तामसी तपों की श्रेणी में आ जाते हैं। जैसे जिस प्रसन्नता से मूर्खता के भाव का उदय हो, हठवादिता की प्रतीति हो, दूसरों को कष्ट प्राप्त हो रहा हो और स्वयं भी दुःख प्राप्त हो तो वह प्रसन्नता तामसी प्रसन्नता कही जाती है। वैसे ही जिस प्रकार के भगवान के नाम के उच्चारण, जप, से मूर्खता की प्रतीति हो, हठधर्मिता का समावेश हो, दूसरे लोग परेशान हो तथा स्वयं को भी कष्ट का अनुभव रहे तो इस प्रकार के भगवान के नाम के जप को तामसी तप का स्वरूप समझना चाहिए। जिस शुद्धि के भाव से मूर्खता प्रदर्शन हो, हठवादिता की प्रतीति हो रही है। दूसरों को कष्ट हो और अपने को कष्ट का आभास हो रहा हो तो इस प्रकार के तप को तामसी तप कहा जाता है।

(दस) सात्त्विक दान :–

सात्त्विक दान की पांच विशेषताएं हैं 1– उचित स्थान अथवा देश में दान का देना 2– उचित काल अथवा समय को देखकर दान का दिया जाना 3– उचित पात्र को दान का दिया जाना 4– दान देने में कर्तव्य कर्म के भाव का रहना 5– दान के बदले में कुछ प्राप्ति की इच्छा न करना। जहां पर दान की आवश्यकता प्रतीत हो रही है अर्थात् सहायता की आवश्यकता का आभास हो रहा है उस स्थान पर अपनी सामर्थ्य के अनुसार धन, द्रव्य, चिकित्सा आदि की सहायता करना उचित देश में दान देना है। जिस समय मनुष्य को आवश्यता हो उस समय दान देना जैसे बाढ़ आ जाने पर, अग्नि लग जाने पर अथवा अन्य

प्रकार की दैवीय आपदाओं के आ जाने पर दान देने को उचित काल में दान देना कहा जाता है। जिस किसी को आवश्यकता हो उसे दान देना, जिसको आवश्यकता न हो उसे न देना उचित पात्र को दान देना कहा जाता है। मनुष्य जब यह समझ लेता है दान देना तो हमारा कर्तव्य है और इस भाव से वह दान देता है तो यह दान सात्त्विक दान के स्वरूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार उपर्युक्त पांच प्रकार के भावों से दिए गए दान को सात्त्विक दान कहा जाता है।

(ग्यारह) राजस दान :–

राजस दान के तीन प्रमुख तथ्य हैं, जो दान 1–कष्टपूर्वक अर्थात् भार समझ कर दिया जाता है वह राजस दान कहलाता है। 2– इस प्रकार के दान देने से हमें इस लोक में अथवा परलोक में कोई पुण्य का लाभ प्राप्त नहीं होता है। 3–फल को दृष्टि में रखकर जो दान दिया जाता है वह भी राजसी दान कहा जाता है जैसे किसी भिखारी आदि को हम कुछ धन आदि देते हैं तो उस धन को देने में हमें कष्ट का आभास होता है तथा यह विचार रखते हैं कि जो इस भिखारी को हमने सहायता की है उस सहायता रूपी दान से हमें भविष्य में लाभ प्राप्त होगा। यह फल का विचार ही सहायता को राजसी दान के रूप में परिवर्तित कर देता है।

(बारह) तामसी दान :–

तामसी दान के पांच प्रमुख तथ्य हैं। जिस दान में 1–सत्कार का भाव न हो अर्थात् सम्मान न किया जाए। 2–जिस दान में तिरस्कार का भाव हो अर्थात् अपमान किया जावे 3–जो दान सुयोग्य को न समर्पित हो 4–जो दान उचित काल और देश को देखकर न दिया जावे 5–जो दान उचित समय पर न दिया जावे वह दान तामसी दान कहलाता है। समाज में कोई सम्मानित मनुष्य हो और उसका सम्मान न करके उसे उपेक्षा भाव से दान दिया जाए तो वह दिया गया दान तामसी दान के स्वरूप में स्वतः ही परिवर्तित हो जाता है। किसी भिखारी को तिरस्कार की भावना से जो दान दिया जाता है वह भी तामसी दान है। जो दान लेने की पात्रता न रखता हो अर्थात् दान प्राप्त करने का पात्र न हो उसे भी यदि दान दिया जाए तो उस दान को भी तामसी दान कहा जाता है। जिस स्थान पर दान की आवश्यकता न हो वहां पर दान दिया जाए तो वह भी तामसी दान है। इसके अतिरिक्त बिना समय देखे जो दान दिया जाता है वह भी तामसी दान के स्वरूप में समझना चाहिए। इस प्रकार सात्विक दान तथा तामसी दान और राजसी दान यह भी दान के तीन स्वरूप है। जो देने के भाव से पात्र कुपात्र द्वेषकाल आदि पर आधारित है। इस प्रकार का दान तो दिया जाता है परन्तु भाव में परिवर्तन है तो दान का प्रकार भी परिवर्तित हो जाता है।

(19) तीन प्रकार के कर्म, कर्ता, ज्ञान तथा बुद्धि :–

कर्म, कर्ता, ज्ञान तथा बुद्धि भी सात्विक, राजस, तामस तीन तीन प्रकार के होते है। तीनों प्रकार के कर्म, कर्ता ज्ञान तथा बुद्धि का क्रमशः अवलोकन करें।

(क) तीन प्रकार के कर्म :–

(एक) सात्विक कर्म :–

सात्विक कर्म विशिष्ट कर्म है। वह कर्म राग–द्वेष के बिना ही किया जाता है। जहां पर शास्त्र विधि का पूर्ण पालन होता है तथा कर्म के सम्पादन का अहंकार भी नहीं होता है। अर्थात कर्तापन के भाव से मुक्ति रहती है और फल की इच्छा के त्याग से जो कर्म किये जाते है वे सभी कर्म सात्विक कहे जाते है। इस प्रकार सात्विक कर्म में चार तथ्य प्रमुख है। इसमें शास्त्र विधि का अनुपालन महत्वपूर्ण है क्योंकि शास्त्र विधि के पालन से विषय भोगों में प्रियता तथा ईष्या द्वेष का त्याग रहता है। कर्तापन के त्याग का भाव भी रहता है तथा फलेच्छा का अभाव हो जाता है। सात्विक कर्म की परख उपरोक्त चारों तथ्यों से हो जाती है जहां पर शास्त्र विधि का त्याग हो अहंकार का उद्‌भव हो फल की इच्छा से कर्म का प्रतिपादन हो राग तथा द्वेष हो, वह कर्म सात्विक कर्म की श्रेणी में नहीं आता है।

(दो) राजस कर्म :–

राजस कर्म में तीन तत्व प्रमुख है। 1– राजस कर्म में कर्ता सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति हेतु कर्म करता है इस कारण इसमें सम विशेष रहता है। 2– राजस कर्म की विशेषता है भोगों की इच्छा से कर्म का सम्पादन । 3– राजस कर्म में कर्ता अहंकार से ग्रसित होकर कर्म करता रहता है अर्थात् उसमें कर्तापन का भाव रहता है। किसी भी कर्म में यदि उपरोक्त तथ्य प्रकट हो, उक्त स्थितियां प्रतीत हो तो उसे निःसंदेह ही राजस कर्म मान लेना चाहिए। राजस कर्म का कर्ता श्रम विशेष करके जब सांसारिक वस्तुओं और भोगों को प्राप्त कर लेता है तो उसमें अहंकार की स्वतः ही उत्पत्ति हो जाती है। उसके कर्मो को राजसी कर्म का स्वरूप मानना चाहिए।

(तीन) तामसी कर्म :–

तामस कर्म के सम्पादन का प्रमुख आधार मोह है। जिसके कारण कर्ता चार तथ्यों पर विचार न करके कर्म करता है। वे तथ्य है– 1– कर्म के परिणाम पर विचार नहीं करता

है। अर्थात् जिस कर्म में उसके परिणाम पर विचार नहीं होता है वह कर्म तामसी कर्म कहा जाता है। 2– जिस कर्म में कर्म से क्या हानि होगी ? उस पर जब विचार नहीं होता है तो उस कर्म को भी तामसी कर्म कहा जाता है। 3– जिस कर्म में हिंसा पर विचार नहीं होता है अर्थात् यह विचार नहीं होता है कि हिंसा उचित है अथवा अनुचित है तो उस कर्म को भी तामसी कर्म का स्वरूप समझना चाहिए। जिस कर्म में अपनी सामर्थ्य और शक्ति पर विचार न करके उसे आरम्भ किया जाता है उस कर्म को भी तामसी स्वरूप का मानना चाहिए। इस प्रकार तामस कर्म के चार तथ्य प्रमुख है। कर्म के परिणाम पर विचार न करना, कर्म के हानि लाभ पर विचार न करना, अपनी सामर्थ्य पर विचार न करना और उचित अनुचित को देखे बिना कर्म करना।

(ख) कर्ता :–

(एक) सात्विक कर्ता :–

सात्विक कर्ता विशिष्ट कर्ता होता है उसमें पांच प्रकार के विशिष्ट भाव रहते है। 1– सात्विक कर्ता का प्रमुख गुण है उसमें आसक्ति का अभाव होता हैं अर्थात् सात्विक कर्ता कर्म तो करता है परन्तु उसमें आसक्त नहीं होता है। 2– सात्विक कर्ता में कर्म के सम्पादन का अहंकार नहीं होता है अमुक कर्म मैने किया ऐसा भाव उसके अंतःकरण में नहीं आता है। 3– सात्विक कर्ता की धारण शक्ति पर्याप्त रहती है इस कारण वह जिस कार्य को करता है वह धैर्यता के साथ करता है। 4– सात्विक कर्ता में कर्म के सम्पादन के प्रति विशेष उत्साह रहता है। जिसके कारण कर्म सुचारू रूप से चलता रहता है। 5– सिद्धि और असिद्धि में समभाव का रखने वाला कर्ता विशिष्ट कर्ता होता है और सात्विक गुण से युक्त हो जाता है। इस प्रकार सात्विक कर्ता में पांच भाव रहते है।

(दो) राजस कर्ता :–

राजस कर्ता के भी पांच लक्षण होते है। 1– राजस कर्ता अपने कर्म के फल की आकांक्षा करके ही कर्म करता है। बिना कर्म की फल की आकांक्षा से वह कोई भी कर्म नहीं करता है। 2– कर्मफल की आकांक्षा से उसमें लोभ की उत्पत्ति हो जाती है इस कारण वह लोभी हो जाता है। 3– राजस कर्ता में अहिंसा के गुण नहीं पाये जाते है। इस कारण अवसर आते ही वह हिंसक हो जाता है। 4– राजस कर्ता का प्रमुख अवगुण है अशुद्ध रहना अर्थात् उसमें शुद्धि स्वभावता नहीं रहती है। 5– राजसकर्ता को अनुकूलता में प्रसन्नता रहती है और प्रतिकूलता में दुःख और शोक रहता है। इस प्रकार राजस कर्ता के पांच लक्षण विशेष होते है जिस मनुष्य में इस प्रकार के लक्षण प्रकट हो तो उसे राजसी कर्ता मानना चाहिए।

(तीन) तामस कर्ता :–

तामसी कर्ता में आठ अवगुण विशेष होते हैं– 1– तामसी कर्ता अपने कर्म में निपुण नहीं होता है तथा उसमें शास्त्रों के प्रति अज्ञानता रहती है। 2– तामसी कर्ता को कर्तव्य और अकर्तव्य के बारे में ज्ञान नहीं रहता है। 3– बातचीत और व्यवहार में अहंकार की अधिकता और हठधर्मिता रहती है। 4– अपने मत और कथन को पुष्ट करने के लिए अतर्क संगत तथ्यों को मनमाने ढंग से अनुमोदित करने की इच्छा रखता है। 5– तामसी कर्ता का यदि किसी ने कल्याण अथवा हित कर दिया है तो वह निश्चितरूप उस कल्याण करने वाले की बुराई करेगा। 6– आलस्य तथा प्रमाद की अधिकता के कारण वह आलसी होता है। 7– मोह के कारण उसके अंतःकरण में मूर्खता का भाव रहता है तथा 8– अनेक प्रकार के सांसारिक कर्मो तथा विषय भोगों की कल्पना से व्यस्त रहता है। यह उक्त आठ अवगुण जिस मनुष्य में प्रतीत हो तो उसे तामसी कर्ता मानना चाहिए।

(ग) ज्ञान :–

(एक) सात्त्विक ज्ञान :–

मनुष्य में जब यह भाव उत्पन्न हो जावे कि वह एक अविनाशी परमात्मा ही समस्त जीवों में विभक्त प्रकार से स्थित है तब वह समता का व्यवहार करने लगता है, क्योंकि वह जानता है कि एक परमात्मा ही समस्त जीवों को चेतन किये हुए हैं तथा यह ज्ञान साधक में जब पुष्ट हो जाता है तो वह व्यवहार में प्रतीत भी होता है। इस प्रकार एक परमात्मा की सत्ता को जब मनुष्य अनेक प्रकार के जीवों में विभक्त हुआ देखता है तथा उस ज्ञान से पुष्ट होकर उसे व्यवहार में भी ले आता है तो इस प्रकार के ज्ञान को सात्त्विक ज्ञान कहा जाता है।

(दो) राजस ज्ञान :–

राजस ज्ञान की विशेषता है संशय । जब मनुष्य रजोगुण से प्रभावित होता है तब वह जितने भी प्राणी हैं उनमें एक परमात्मा की स्थिति का विनिश्चय समाप्त कर देता है। इससे वह मनुष्यों में भी अंतर समझता है तथा वैसा ही व्यवहार करता है। इसी भाव की प्रबलता के कारण धनी व्यक्तियों के प्रति पृथक् प्रकार का व्यवहार होता है और गरीबों तथा निम्न श्रेणी के व्यक्तियों के प्रति पृथक् प्रकार का व्यवहार होता है। जबकि यह सात्त्विक ज्ञान में नहीं रहता है। यह पृथकतावादी ज्ञान ही राजस ज्ञान कहा जाता है।

(तीन) तामस ज्ञान :–

तामसी ज्ञान से मनुष्य अपने शरीर में आसक्त रहता है तथा उसके पोषण हेतु लगा रहता है। इस प्रकार के ज्ञान को तामसी ज्ञान कहते हैं। तामसी मनुष्य को शरीर की वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं होता है और उसे वास्तविकता का बोध नहीं होता है। यह शरीर विनाशशील है तथा निरन्तर वृद्धावस्था को प्राप्त होकर अंत में विनाश होने वाला है परन्तु तामसी ज्ञान के कारण तामसी पुरूष उसे नाश न होने वाला मानकर व्यवहार करते रहते हैं। इस प्रकार का ज्ञान तामसी ज्ञान कहलाता है।

(घ) बुद्धि :–

(एक) सात्त्विक बुद्धि :–

सात्त्विक बुद्धि तीन तथ्यों को जानती हैं। 1– किस कार्य मे प्रवृत्त होना है और किस कार्य से निवृत होना है। यह तथ्य सात्त्विक बुद्धि सम्यक्रूपेण जानती है। 2– कर्तव्य और अकर्तव्य को जानती है। अर्थात् मनुष्य को क्या करना चाहिए? और क्या नहीं करना चाहिए? इस तथ्य का ज्ञान सात्त्विक बुद्धि रखती है। 3– बंधन तथा मुक्ति के कारण और उसके उपाय का भी ज्ञान सात्त्विक बुद्धि को होता है। सात्त्विक बुद्धि का प्रमुख लक्षण है कि वह अपने कर्म की परख कर लेती है तथा अपने जीवन के उद्देश्य को जान कर उसे प्राप्त करने की चेष्टा करती है।

(दो) राजसी बुद्धि :–

राजसी बुद्धि की दो विशेषताऐं हैं जिन्हें विशेषता न कहकर अज्ञानता कहा जाना उचित होगा। राजसी बुद्धि धर्म और अधर्म के अंतर को नहीं जानती है। धर्म तथा अधर्म का विषय हमारे समाज से सम्बंध रखता है तथा व्यक्तिगत जीवन से तो रखता ही है कर्तव्य और अकर्तव्य का समाज से सम्बंध है, व्यक्तिगत जीवन से भी सम्बंध है। इस कारण धर्म तथा कर्तव्य के विषय में जानना हमारे लिए अनिवार्य है। जो बुद्धि धर्म और कर्तव्य के बारे में ठीक ठीक ज्ञान नहीं रखती है वह बुद्धि राजसी बुद्धि कही जाती है।

(तीन) तामसी बुद्धि :–

तमोगुण से प्रभावित मनुष्य में तामसी बुद्धि होती है। इस कारण एक तो वह अधर्म को धर्म मान लेती है और समस्त अर्थो का प्रतिकूल भाव निकालती है। तमोगुण से आवृत हो जाने पर मनुष्य में अज्ञान की स्वतः ही उत्पत्ति हो जाती है और यह अज्ञान मनुष्य को

अधार्मिक कार्यो का विनिश्चय करवाता है तथा अधार्मिक कार्यो को धर्मसंगत समझ कर उसका क्रियान्वयन करता है। अधर्म को धर्म समझने का भ्रम और भाव तमोगुण के कारण ही होता है। यह तथ्य तामसी बुद्धि की विशेषता है। किसी भी विषय के अर्थ को प्रतिकूल निकालना और वैसा ही प्रतिकूल सम्पादन करना यह तामसी बुद्धि का लक्षण है।

(20) तीन प्रकार के त्याग, धृति तथा सुख :–

त्याग, धृति तथा सुख भी तीन प्रकार के हैं जिन्हें सात्त्विक, राजस, तथा तामस कहा जाता है। प्रत्येक का पृथक्–पृथक् अवलोकन करें।

(क) त्याग :–

(एक) सात्त्विक त्याग :–

सात्त्विक त्याग के दो प्रमुख तथ्य हैं। 1–कर्म में आसक्ति का परित्याग 2–कर्म में फल की इच्छा का परित्याग। यदि साधक कर्तव्य कर्मो का सम्पादन करता है और उसमें आसक्ति का परित्याग कर देता है और फल की इच्छा का भी त्याग कर देता है तो वह त्याग सात्त्विक त्याग कहा जाता है। कर्म में आसक्ति तथा फल की इच्छा से ही मनुष्य को बंधन होता है। मनुष्य जब सांसारिक वस्तुओं को भोगों की प्राप्ति के लिए कर्म करता है तो उसे कर्म में आसक्त समझा जाता है, क्योंकि उसके कर्म भोगों, विषयों के लिए ही है। इसी प्रकार फल की आकांक्षा को दृष्टिगत् रखकर जब मनुष्य कर्म करता है तो भी वह बंधन में हो जाता है इस कारण दोनों कर्म आसक्ति तथा फलेच्छा का त्याग ही सात्त्विक त्याग कहा जाता है।

(दो) राजस त्याग :–

बहुत से मनुष्य परिश्रम को दृष्टिगत् रखकर कर्म नहीं करना चाहते हैं क्योंकि परिश्रम से शारीरिक कष्ट होता है। शारीरिक कष्ट से दुःख होता है। इस कारण श्रम के भय से शरीर को कष्ट न देने के भाव से जो कर्तव्य कर्मो का त्याग किया जाता है वह राजस त्याग कहलाता है। कर्तव्य कर्मो के आचरण में शारीरिक श्रम करना पड़ता है और श्रम से भी शरीर को कष्ट होता है। कष्ट होने के भाव को दृष्टिगत् रखकर जब मनुष्य कर्तव्य कर्म का त्याग कर देते हैं तथा आवश्यक कर्तव्य कर्म भी नहीं करते हैं तो यह त्याग राजसी त्याग कहलाता है।

(तीन) तामसी त्याग :–

मनुष्य के लिए शास्त्रों ने कर्तव्य कर्मो का विनिश्चय किया है। पवित्र वेदों में इसका विस्तार से वर्णन है तथा अनेक शास्त्रों में भी इस विषय में पर्याप्त वर्णन किया गया है।

प्रत्येक मनुष्य के वर्ण, अवस्था, आश्रम में कर्मो का किया जाना निश्चित है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास, आश्रम के कर्मो को शास्त्रों ने विनिश्चित किया है। वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सूद्र, वर्णो के भी कर्म हैं। बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था के भी कर्म हैं। जो मनुष्य को पूरी शक्ति से बिना मोहित हुए करना चाहिए। यदि निश्चिय किये गए कर्मो का सम्पादन नहीं किया जाता है और कर्मो का त्याग कर दिया जाता है तो इसे तामसी त्याग कहते हैं।

(ख) धृति :–

(एक) सात्त्विक धृति :–

सात्त्विक धारण शक्ति से मनुष्य मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं से परमात्मा का विनिश्चय कर लेता है तथा संसार के अस्तित्त्व के विनिश्चय का त्याग कर देता है। यह धारण शक्ति सात्त्विक है। मन की जो भी क्रिया है उस क्रिया से परमात्मा का विनिश्चय होना चाहिए। प्राण की जो श्वांस गति है उसमें परमात्मा के नाम का विनिश्चय होना चाहिए। इन्द्रियों की जो क्रियाऐं हैं उनसे विषयों को ग्रहण करना छोड़कर परमात्मा के लिए कर्म होना चाहिए। जब यह भावना मनुष्य पुष्ट कर लेता है अथवा जिसके द्वारा ऐसी धारणा पुष्ट कर ली जाती है तो उस घृति को सात्त्विक धृति कहते हैं। इसमें संसार के विनिश्चय का त्याग रहता है।

(दो) राजसी धृति :–

राजसी गुणों से आवृत मनुष्य जिस धारणा के द्वारा धर्म, अर्थ, काम, का धारण फलेच्छा से आसक्तिपूर्वक करता है वह धृति राजसी धृति कहलाती है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष मानव जीवन के पुरूषार्थ हैं, परन्तु यदि धर्म का धारण फल की इच्छा से तथा आसक्तिपूर्वक किया जाता है तो राजसी धृति कहलाता है। इसी प्रकार कामना का धारण यदि फल की इच्छा से आसक्तिपूर्वक किया जाता है तो वह धारणा भी राजसी धारणा के स्वरूप में परिवर्तित हो जाती है। अर्थ का धारण भी यदि फल की इच्छा से किया जाता है और उसमें आसक्ति का भाव रहता है तो यह धारणा भी राजसी धारणा हो जाती है। इस राजसी धारणा में फल की इच्छा तथा आसक्ति विशेष है।

(तीन) तामसी धृति :–

जिस धृति से अर्थात् धारण शक्ति से मनुष्य पांच तथ्यों को ग्रहण किये रहता है उस धारणा को तामसी धारणा कहते हैं। इन पांच तथ्यों में स्वप्न, भय, शोक, विषाद तथा

मद का नाम आता है। तामसी मनुष्य में स्वप्न की भावना रहती है क्योंकि उसकी बुद्धि दुष्ट स्वभाव की होती है। लोगों के अहित से वह अपने हित का स्वप्न देखा करता है और इस विचार को धारण किये रहता है। अनिष्ट की आशंका से उसमें भय की धारणा भी रहती है तथा अनिष्ट हो जाने पर शोक की धारणा रहती है। वियोग के भाव में विषाद की धारणा रहती है तथा तमोगुण के प्रभाव से अहंकार की धारणा रहती है। इस प्रकार तामसी धृति से तामसी मनुष्य स्वप्न, भय, शोक, विषाद तथा मद का धारण कर लेता है। उसका परित्याग नहीं हो पाता है। इसी को तामसी धृति कहा जाता है।

(ग) सुख :–

(एक) सात्त्विक सुख :–

सात्त्विक सुख विशिष्ट सुख है, जिसकी अनुभूति का एक मात्र साधन परमात्मा के विषय में चिंतन करना है। परमात्मा विषयक सुख प्राप्त हो जाने पर मनुष्य को सांसारिक सुखों की तुच्छता का आभास रहता है। संसार में जो सुख है वह सात्त्विक सुख नहीं है वह तो राजसी सुख है, क्योंकि उसमें सुखों की क्षणिकता है। जैसे हम आपने कोई सुस्वादु भोजन ग्रहण किया तो हमें सुख का आभास होता है और तृप्ति का अनुभव भी रहता है परन्तु यदि खराब भोजन खाना पडे, तो वह सुस्वादु भोजन का सुख स्वतः ही समाप्त हो जाता है और तृप्ति समय के साथ समाप्त हो जाती है। इस कारण कोई भी सुख स्थिर नही है। परमात्मा में जब अभ्यास से रमण होता है तो जो सुख प्राप्त होता है वह स्थायी रहता है। अभ्यास से संसार के सुख से विरक्ति करनी पड़ती है। इस कारण आरम्भ में यह स्थिति दुखपूर्ण होती है, परन्तु अंत में वह सुखपूर्ण हो जाती है। इस कारण सात्त्विक सुख आरम्भ में विषवत् तथा परिणाम में अमृत के तुल्य रहता है।

(दो) राजसी सुख :–

राजसी सुख सांसारिक सुख का पर्याय है। संसार में जितने भी प्रकार से सुख हैं वे सबके सब इन्द्रियों तथा मन से ग्रहण किये जाते हैं। हमारी इन्द्रियां तथा उनके विषय शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गंध, आदि से मनुष्य को सुख की अनुभूति होती है, परन्तु यह अनुभूति बहुत सीमित है। जैसे हम सुस्वादु भोजन का आनन्द लेते हैं और सुस्वादु भोजन ग्रहण करने की सीमा है। तृप्ति के उपरान्त अर्थात् पेट भरने के पश्चात् चाहें जितना सुस्वादु भोजन प्राप्त हो वह निरर्थक ही लगेगा। इस प्रकार सांसारिक सुख अर्थात् इन्द्रियों के संयोग से प्राप्त होने वाले सुख की सीमाऐं हैं। इस प्रकार जितने भी प्रकार के सांसारिक सुख हैं, वे सभी सुख राजसी सुख के स्वरूप में समझे जाते हैं। राजसी सुख की

यही विशेषता होती है कि वे पहले तो अच्छे प्रतीत होते है परन्तु उनका परिणाम दुःखद प्राप्त होता है।

(तीन) तामसी सुख :–

तामसी गुण का प्रभाव मनुष्य पर जब पड़ता है तो उसमें निद्रा, आलस्य तथा प्रमाद की स्वतः उत्पत्ति हो जाती है। निद्रा से आलस्य और प्रमाद से जो सुख तामसी मनुष्य को प्राप्त होता है उसको तामसी सुख कहा जाता है। यह पहले भी और अंत में भी दुःखद ही रहता है। तमोगुण के प्रभाव से निद्रा का आना स्वाभाविक ही है। निद्रा में, आलस्य में, प्रमाद में तमोगुणी मनुष्य को सुख का आभास होता है। तमोगुणी मनुष्य निद्रा में, आलस्य में, प्रमाद में जो सुख का आभास करता है वह परिणामतः बहुत दुखद होता है क्योंकि कार्य न करने से जीवन निर्वाह भी सिद्ध नहीं होता है। निद्रा, आलस्य, प्रमाद, में सुख की काल्पनिक प्रतीति होती है, वह वास्तव में नहीं होती है, क्योंकि यह जीवन के अभिप्राय ओर उद्देश्य में भी बाधक है। तमोगुण के प्रभाव से जब तमोगुणी मनुष्य कोई कार्य करता है तब वह सम्पर्कित लोगों के दुख के लिए होता है और इससे परिणामतः दुख ही प्राप्त होता है। तमोगुण के प्रभाव से दुःख होता है, क्योंकि अज्ञान ही इसका परिणाम कहा गया है। इस प्रकार मनुष्य तमोगुण से मोहित रहता है।

(21) त्रिगुणातीत स्थिति :–

यह समस्त जगत त्रिगुणों से प्रभावित है, इस कारण प्रत्येक मनुष्य त्रिगुणों से प्रभावित रहकर ही कार्य कर रहा है। पूर्व में त्रिगुणों के विषय में पर्याप्त चर्चा हुई है, जिसे देखकर यह प्रतीत होता है कि समस्त मनुष्य त्रिगुणों अर्थात् सत्त्व, रज, तम के प्रभाव में ही रहते हैं तथा उन्हीं के प्रभाव से कार्य करते हैं। कोई मनुष्य सात्त्विक गुण से प्रभावित है और उससे प्रभावित होकर कार्य कर रहा है कोई मनुष्य रजोगुण से प्रभावित हैं और रजोगुण के प्रभाव से कार्य कर रहा है और अन्य मनुष्य तमोगुण से प्रभावित हैं और उसके प्रभाव से कार्य कर रहे हैं। यहां पर यह प्रश्न है कि क्या हम त्रिगुणों के प्रभाव से मुक्त हो सकते हैं? और यदि मुक्त हो सकते हैं तो कैसे मुक्त हो सकते हैं? वह कौन सी विधि है? जो मनुष्य को त्रिगुणातीत कर सकती है अर्थात् त्रिगुणों के प्रभाव से मुक्त कर सकती है।

इस चर्चा से पूर्व एक तथ्य और स्पष्ट करना है कि शास्त्रों में चार युगों का वर्णन आता है जिन्हें सतयुग, द्वापर, त्रेता तथा कलयुग कहा जाता है। इन चारों युगों को एक चतुर्युगी कहते हैं। वर्तमान में कलयुग चल रहा है। सतयुग में सात्त्विक गुण प्रधान मनुष्यों की बहुलता रहती है तथा राजसी और तामसी गुणों की प्रधानता वाले मनुष्य नहीं होते हैं।

त्रेतायुग में सात्त्विक राजस गुणों की प्रधानता वाले मनुष्यों की संख्या अधिक हो जाती है। तामसी गुणों की प्रधानता वाले मनुष्य कम ही रहते हैं। द्वापर युग में राजस तथा तामस प्रधान मनुष्यों की संख्या बढती जाती है, परन्तु सात्त्विक गुणों वाले मनुष्यों की संख्या भी पर्याप्त रहती है। कलयुग में तमोगुण की प्रधानता वाले मनुष्य संख्या में अधिक हो जाते हैं और उससे कम रजोगुण से प्रभावित मनुष्य होते हैं। कलयुग में तमोगुण की प्रधानता वाले मनुष्य अधिक हो जाने के कारण उनकी बहुलता प्रतीत होती है तथा रजोगुण के स्वभाव वाले मनुष्य भी देखे जाते हैं, परन्तु सात्त्विक गुण प्रधान मनुष्य अल्प मात्रा में हो जाते हैं इसलिए वह कम प्रतीत होते हैं। त्रिगुणातीत स्थिति प्राप्त करने के सम्बंध में यहां पर कुछ तथ्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं कृपया उनका अवलोकन कीजिए–

(क) त्रिगुण कर्ता है मनुष्य कर्ता नहीं है :–

प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक कर्म सात्त्विक, राजस और तामस गुणों के प्रभाव से करता है। सात्त्विक गुणों से प्रभावित मनुष्य शुभकर्म करता है रजोगुण से प्रभावित मनुष्य सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति हेतु कर्म करता है तथा तमोगुण से प्रभावित मनुष्य हिंसा आदि दुष्कर्म करता है। इस प्रकार मनुष्य के समस्त कर्म गुणों से प्रभावित ही होते हैं। जब मनुष्य पर सात्त्विक गुण का प्रभाव रहेगा तो वह भगवान की पूजा, उपासना, सेवा आदि कर्म करेगा। उसे इस प्रकार के पूजा, उपासना आदि कर्मो से रोका नहीं जा सकता, क्योंकि सत्त्वगुण ही कर्म करवाता है। सात्त्विक गुण से प्रभावित मनुष्य हिंसा ओर दुष्कर्म कदापि नहीं करेगा। हिंसा और दुष्कर्म तमोगुण से प्रभावित मनुष्य अवश्य करेगा। वह पूजा तथा समाजसेवा जैसे शुभ कर्म नहीं करेगा। सत्संग स्थल पर तमोगुणी मनुष्य यदि बैठता है तो वह प्रवचन नहीं सुनेगा, वरन् बैठकर सोयेगा। उसे प्रवचन में कोई रूचि नहीं होगी। तमोगुणी मनुष्य शास्त्रों का अध्ययन भी नहीं करेगा, इससे वह कहानियां तथा उपन्यास आदि पढेगा, क्योंकि तमोगुण उसे ऐसा अध्ययन करने को बाध्य करता है। सत्त्वगुण के प्रभाव से तथा तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य के कार्य का अवलोकन किया जा सकता है।

उसी प्रकार रजोगुण के प्रभाव से मनुष्य सांसारिक कर्मो को करेगा अर्थात् मनुष्य जब रजोगुण के प्रभाव से प्रभावित होगा तो वह सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति की कामनाऐं करेगा और उनकी प्राप्ति का प्रयास विशेष करेगा। तरह तरह की योजनाऐं बनाना, धन के उर्पाजन के विषयों पर विचार करना, उनको कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्नशील होना आदि आदि कर्म रजोगुण के प्रभाव से होते हैं। रजोगुण से प्रभावित मनुष्य जिस स्तर का होता है वह उस स्तर पर विचार करता है। एक निम्नस्तर का मनुष्य मध्यमवर्गीय स्तर के बनने का, मध्यमवर्गीय मनुष्य उच्चस्तर के मनुष्य बनने का तथा उच्चस्तरीय मनुष्य संसार

के समग्र धन सम्पत्ति पर अधिकार करने की इच्छा रजोगुण के कारण करता है। यह तो कामना है और इस कामना की पूर्ति हेतु मनुष्य प्रयत्नशील होता है और अपनी शक्तिभर प्रयास करता है। यह रजोगुण का प्रभाव है जिसके अधीन मनुष्य कर्म करता है। रजोगुण से प्रभावित मनुष्य में अनेक कामानाऐं स्वतः ही उत्पन्न होती रहती हैं। इस कारण वह उनकी प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील भी रहता है।

सभी लोग इस प्रकार त्रिगुणों अर्थात् सत्त्व, रज, तम से प्रभावित होकर कर्म करते रहते हैं। सत्त्वगुण के प्रभाव से शुभ कर्म होते हैं। रजोगुण के प्रभाव से संसार की वस्तुओं की प्राप्ति हेतु कर्म होते हैं तथा तमोगुण के प्रभाव से दुष्कर्मो का सम्पादन मनुष्य करता है। यहां पर एक तथ्य और समझना चाहिए कि सात्त्विक गुणों के प्रभाव से जो शुभकर्म होते हैं उनका परिणाम शुभ होता है। रजोगुण के प्रभाव से जो कर्म होते हैं उनका परिणाम दुःख होता है और तमोगुण के प्रभाव से जो दुष्कर्म होते हैं उससे मनुष्य का पतन हो जाता है। अब आप समझ गए होंगे कि समस्त कर्मो का कर्ता मनुष्य नहीं है, वरन् त्रिगुण ही कर्ता हैं, क्योंकि त्रिगुणों के प्रभाव से ही समस्त प्रकार के कर्म सम्पादित होते हैं।

(ख) त्रिगुणों को कर्ता समझनाः–

साधारणतया हम सभी प्रत्येक कर्म का कर्ता स्वयं को मान लेते हैं। हम कोई भी कर्म करते हैं तो यह कहते हैं कि मैने अमुक कर्म किया। इस तथ्य को इस भावना को एक प्रकार की अज्ञानता ही कहेंगे, क्योंकि त्रिगुण प्रत्येक कर्म के कर्ता हैं और हम अपने को कर्म का कर्ता समझते हैं। सात्त्विक पुरूष जब पूजा उपासना आदि करता है अथवा समाज सेवा के शुभ कर्म करता है तो वह ऐसा कहता है कि मैने भगवान की पूजा उपासना की है। अमुक अमुक लोगों की सहायता की है। स्कूल और अस्पताल बनवाये हैं। यह सबका सब अज्ञान है, उसने कुछ नही किया है। सत्त्वगुण ने किया है। इसी प्रकार जब मनुष्य धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, पद, प्रतिष्ठा आदि एकत्र कर लेता है तब वह रजोगुण से प्रभावित होकर यह कहता है कि मैने इतना धन एकत्र कर लिया, इतनी सम्पत्ति एकत्र कर ली। मैं ऐश्वर्यवान हो गया हूं, मेरे पास बहुत प्रतिष्ठा है। तो यह कथन अज्ञानतापूर्ण है। उसने वस्तुतः कुछ नही किया है। यह सब रजोगुण का कार्यरूप है। इसी प्रकार मनुष्य जब हिंसा आदि दुष्कर्म करता है तो वह कहता है कि मैने इतनी हत्याऐं की हैं। अमुक शत्रुओं का विनाश किया है। यह अज्ञान है। उसने कुछ नहीं किया वरन् यह सब तमोगुण का कार्य रूप है। इस कारण मनुष्य को कभी किसी भी कर्म का कर्ता अपने को नहीं मानना चाहिए। यदि वह कर्ता मानता है तो अज्ञानता में है, परन्तु मनुष्य अपने कर्मो का भोक्ता भी अवश्य है। यह एक विशिष्ट स्थिति है और परमात्मा की व्यवस्था है कि मनुष्य

गुणों के अधीन रहकर कर्म करता है, परन्तु वह जो कर्म करता है उसका भोक्ता स्वयं होता है, अर्थात् वह कर्मो के परिणाम से बच नहीं सकता।

(ग) अपने को कर्ता न मानना त्रिगुणातीत होना है :–

अपने को कर्ता न मानना गुणों को कर्ता मानना यह स्थिति विलक्षण है। साधारणतया प्राप्त होने वाली नहीं हैं, क्योंकि इसमें कर्तापन के अभिमान से साधक को मुक्त होना पड़ता है। कर्म करके अपने को कर्ता न मानना यह कोई सामान्य स्थिति नही है। सामान्य कैसे हो सकती है? हमने बहुत परिश्रम करके धन एकत्र किया और उससे बहुत सारा व्यवसाय खड़ा कर दिया। अनेक भवन बनवा दिऐ और यह कहें कि हमने कुछ नही किया है, तो यह सामान्य स्थिति नही कही जाएगी। इसे असामान्य और असाधारण स्थिति कहा जाएगा। हम अध्ययन करें और ज्ञान प्राप्त कर लें और यह कहें कि हमने कुछ नहीं किया तो यह स्थिति अत्यंत विलक्षण है, जो सामान्यता प्राप्त होने वाली नहीं है।

कर्तापन के अभिमान से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि हम अपने को किसी भी कर्म का कर्ता न माने, वरन् गुणों को कर्ता मानें । यह मानना तथा उसका व्यवहार करना यह दो पृथक्–पृथक् तथ्य हैं। जैसे हम किसी शहर का मार्ग जानते हैं परन्तु उस शहर तक पहुंचने के लिए हमें उस मार्ग पर चलना पड़ता है तभी हम अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुंच पाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य कर्ता नही है, वरन् त्रिगुण कर्ता हैं। यह जानकर उसका पालन भी करना पड़ेगा। यह स्थिति हमें स्वयं साधना से दृढ़ करनी पडेगी। बिना साधना के, आचरण के हम त्रिगुणों से अतीत नहीं हो सकते हैं। यह स्थिति कोई सामान्य स्थिति नही बहुत विलक्षण स्थिति है।

(घ) त्रिगुणातीत से परमात्मा की प्राप्ति :–

परमात्मा गुणों से अतीत है, अर्थात त्रिगुणों का प्रभाव परमात्मा पर नहीं है। हम सभी पर गुणों का प्रभाव रहता है। प्रकृति ने त्रिगुणों को उत्पन्न किया है। इस कारण त्रिगुणों को प्रकृतिजन्य कहा जाता है। प्रकृति अनादि होते हुए भी परमात्मा की सहचारिणी है, इस कारण ये संकल्पना कर लेनी चाहिए कि प्रकृति को परमात्मा ने ही उत्पन्न किया होगा, अथवा प्रकृति जब भी अपने अस्तित्त्व में आई होगी तो वह परमात्मा की शक्ति से आई होगी, इस कारण प्रकृति को परमात्मा के द्वारा उद्भवित मान लिया जाए तो यह अन्यथा नहीं होगा।

मनुष्य प्रकृतिजन्य गुणों के अधीन कार्य करता है और जीव को बंधन त्रिगुणों के कारण ही होता है। परमात्मा का अंश जीव त्रिगुणों के प्रभाव से ही और उसके कार्यरूप से

बंधन में हो जाता है। इस तथ्य को सहजतापूर्वक हम समझ सकते हैं। सत्त्वगुण सुख और ज्ञान की आसक्ति से जीव को बंधन देता है। रजोगुण कर्म की आसक्ति से जीव को बंधन देता है, और तमोगुण निद्रा, आलस्य, प्रमाद से जीव को बांध देता है। जब साधक त्रिगुणों से अतीत हो जाता है तो उसका बंधन समाप्त हो जाता है और वह अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। यह स्थिति परमात्मा के आभास करने की अथवा परमात्मा के साक्षात्कार करने की कही जाती है और मानी जाती है।

जगत् की समस्त गतिविधियां प्रकृति का कार्यरूप समझना चाहिए। गुण ही गुणों में व्यवहरित हो रहे हैं। जब मनुष्य गुणों के प्रभाव तथा उसके प्रभाव से अपने को पृथक् कर लेता है तो वह त्रिगुणों से अतीत हो जाता है। सत्त्वगुण से परमात्मा की अनुभूति तो नहीं होती परंतु सत्त्वगुण परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। जब तक मनुष्य रज और तम गुणों के अधीन रहता है तब तक वह परमात्मा के संबंध में विचार ही नहीं कर सकता। अर्थात् परमात्मा की ओर उन्मुख नहीं होता है। कभी–कभी उन्मुखता होती भी है अर्थात रज और तम गुण से प्रभावित मनुष्य यदि कतिपय कारणों से परमात्मा के संबंध में विचार भी करता है तो यह विचार क्षणिक ही रहता है।

सत्त्वगुण की प्रबलता से और उसके प्रभाव से मनुष्य परमात्मा की ओर उन्मुख हो जाता है और जब साधक सत्त्वगुण को भी त्याग देता है अर्थात सत्त्वगुण के कार्यरूप का अतिक्रमण कर देता है तो वह शुद्ध सत्त्वगुण में स्थित ही जाता है और गुणातीत स्थिति का आभास करता है। मुख्य तथ्य यह है कि साधक जब गुणों के प्रभाव से अपने को मुक्त करता है तभी वह त्रिगुणातीत हो पाता है। त्रिगुणातीत होने के लिए परमात्मा के नाम का जप का निरंतर सेवन करना चाहिए। इससे साधक को बहुत लाभ होता है। परमात्मा के नाम के जप से त्रिगुण उसे स्वतः ही छोड़ देते हैं। नाम जप में निरंतरता आने से गुणों के प्रभाव का और उनके स्वरूप का स्पष्ट दर्शन होता है और गुणों का कार्यरूप दिखता है। मन को परमात्मा के स्वरूप में लगाने से और बुद्धि को निवेशित करने से अनन्यता आने पर साधक निश्चतरूपेण त्रिगुणों से अतीत हो जाता है अर्थात् त्रिगुणातीत स्थिति प्राप्त कर लेता है।

(22) त्रिगुणातीत मनुष्य के लक्षण–

त्रिगुणातीत मनुष्य साधक से सिद्ध हो जाता है। यह स्थिति साधना की पराकाष्ठा की स्थिति है। इसे समाधि मानना चाहिए। ऐसी स्थिति में परमात्मा का नित्य साथ रहता है त्रिगुणातीत मनुष्य के कुछ विशेष लक्षण होते हैं, जो प्रकट रहते हैं। उन लक्षणों को

देखकर हम त्रिगुणों से अतीत मनुष्य की परख कर सकते हैं, परंतु ये परख इतनी सहज नहीं है हमें भी इसके लिए साधना की पराकाष्ठा पर पहुंचना पड़ता है।

(क) समत्व स्थिति–

त्रिगुणातीत मनुष्य का विशिष्ट गुण है कि वह समत्व की स्थिति प्राप्त कर लेता है। निम्न तथ्यों में उसे समतापूर्ण स्थिति सहजता से प्राप्त हो जाती है जिनमें सामान्य मनुष्य स्थित नहीं हो सकता है। जिन तथ्यों में उसे समतापूर्ण स्थिति प्राप्त हो जाती है उनका यहां प्रस्तुतिकरण किया जाता रहा है–

(एक) सुख–दुख में समता– सुख आने पर प्रसन्नता का आभास न होना और दुख आने पर शोक का उद्‌भव न होना अर्थात् दुख का आभास न होना। सुख–दुख में समता का भाव है। सामान्य मनुष्य अनुकूल स्थितियों में सुख–प्रसन्नता का आभास करता है और प्रतिकूल परिस्थितियों मे ंदुख का आभास करके शोकग्रस्त हो जाता है परंतु त्रिगुणातीत मनुष्य सुख में सुखी और दुख में दुखी नहीं होता। यह त्रिगुणातीत पुरुष का विशेष गुण माना जाता है।

(दो) मान–अपमान में समता– त्रिगुणातीत मनुष्य को मान तथा अपमान में समभाव प्राप्त रहता है। उसे सम्मानित किया जावे या अपमानित किया जावे वह एकसमान ही व्यवहार करता है। साधारणतया प्रत्येक मनुष्य सम्मान चाहता है और मान–सम्मान मिलने पर उसमें प्रसन्नता का भाव स्वतः ही उत्पन्न हो जाता है और यदि सामान्य मनुष्य को अपमानित किया जाए तो वह दुखी हो जाता है। उदग्नि हो जाता है, परंतु त्रिगुणों से अतीत मनुष्य के लिए मान और सम्मान दोनों ही स्थितियां एक समान रहती हैं अर्थात् वह मान सम्मान मिलने पर एकसमान रहता है और न मिलने पर भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(तीन) मित्र तथा शत्रु में समता– त्रिगुणातीत मनुष्य का व्यवहार शत्रु और मित्र के प्रति एकसमान रहता है। त्रिगुणातीत मनुष्य का कोई न तो मित्र होता है और न तो शत्रु होता है वह सभी को एकसमान दृष्टि से देखता है। सब में परमात्मा की उपस्थिति का आभास करता है। इस आभास से ही वह मनुष्य शत्रु और मित्र में समता का भाव उत्पन्न कर लेता है। सामान्य मनुष्य में शत्रु के प्रति शत्रुता का भाव रहता है और मित्र के प्रति स्नेह का भाव रहता है परंतु त्रिगुणों से अतीत मनुष्य में उक्त दोनों भाव नहीं रहते हैं।

(चार) मिट्‌टी, पत्थर, स्वर्ण में समता– त्रिगुणातीत मनुष्य के लिए मिट्‌टी का टुकड़ा, पत्थर का टुकड़ा व स्वर्ण का टुकड़ा एक ही मूल्य रखता है। सामान्य लोगों के लिए

मिट्टी के टुकड़े का पृथक् मूल्य है, पत्थर के टुकड़े का पृथक् मूल्य है तथा स्वर्ण का टुकड़ा बहुमूल्य है। त्रिगुणातीत मनुष्य बहुमूल्यता के तथ्य को समाप्त कर देता है। उसके लिए स्वर्ण भी मिट्टी के समान मूल्य वाला है और मिट्टी भी स्वर्ण के समान मूल्य वाला है। हम इस प्रकार उक्त चारों गुणों की स्थिति समझकर त्रिगुणातीत मनुष्य की परख कर सकते हैं।

(ख) कर्तृत्व भाव–

त्रिगुणातीत मनुष्य का कर्तृत्व भाव विलक्षण है। उसके व्यवहार में यह भाव प्रकट होता है। क्रियाओं में दिखता है और उसका आभास हम उसके साथ रहकर स्वयं कर सकते हैं। इसी कर्तृत्व भाव के चार तथ्यों का वर्णन यहां पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

(एक) उदासीनवत् व्यवहार– त्रिगुणातीत मनुष्य उदासीनवत् व्यवहार करता है। संसार की समस्त क्रियाऐं प्रकृति के द्वारा ही होती हैं तथा प्रकृतिजन्य गुणों से संपादित होती हैं। मनुष्य प्रकृति के अनेक कार्यों में उदासीनवत् व्यवहार करता है। जैसे–सूर्य का निकलना, चन्द्रमा का उदय अस्त होना, वर्षा का होना, वनस्पतियों का वृद्धि को प्राप्त हो जाना आदि क्रियाऐं मनुष्य उदासीनवत् भाव से देखते हैं परंतु अनेक क्रियाओं से अपना संबंध जोड़ लेते हैं। ये संबंध जोड़ना ही बंधन का हेतु है। त्रिगुणातीत मनुष्य संसार की समस्त क्रियाओं को देखता है और व्यवहार करता है। यह उसका विशिष्ट कर्तृत्व भाव है।

(दो) कर्मों का अनारंभ– सामान्य मनुष्य संसार में अनेक प्रकार के नवीन कर्मों को आरंभ करने की चेष्टा किया करता है और यह अनेक प्रकार के कर्मों को आरंभ करने की चेष्टा ही उसके बंधन का कारण हो जाती है। त्रिगुणातीत मनुष्य किसी भी प्रकार के नवीन संसारिक कर्मों को आरंभ नहीं करता है। वह जीवननिर्वाह के लिए निरपेक्ष भाव से कर्मो का संपादन करता रहता है। एक सामान्य मनुष्य नवीन कर्मों का आरंभ करता है परंतु त्रिगुणातीत कोई भी कर्म आरंभ नहीं करता है। यह त्रिगुणातीत का विशिष्ट कर्तृत्व भाव है।

(तीन) प्रकाश, प्रवृत्ति, मोह से निवृत्ति– सात्त्विकगुण का कार्यरूप प्रकाश है, रजोगुण का कार्यरूप प्रवृत्ति है और तमोगुण का कार्यरूप मोह है। सत्त्वगुण कार्यरूप प्रकाश है जिससे ज्ञान अज्ञान में अंतर का बोध होता है। त्रिगुणातीत मनुष्य इस अंतर के आभास से ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार वह सत्त्वगुण से परे हो जाता है। रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह से पहले ही निवृत हो चुका होता है, क्योंकि रज और तम के त्याग से ही सत्त्वगुण का प्रभाव आरंभ होता है। इस प्रकार त्रिगुणातीत मनुष्य त्रिगुणों के कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह से निवृत्त हो जाता है।

(चार) चेष्टारहित रहता है– मनुष्य जब त्रिगुणों से अतीत हो जाता है तो वह चेष्टा विहीन हो जाता है। सामान्य मनुष्य संसार में संसारिक अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त करने की चेष्टा किया करता है। नित्य नई वस्तुओं की प्राप्ति हेतु चेष्टाऐं चलती रहती हैं, क्योंकि हम सभी को कुछ न कुछ वस्तुओं की, स्थितियों की आवश्यकता का आभास रहता है और आवश्यकताऐं अवशेष भी रहती हैं, परंतु त्रिगुणातीत मनुष्य को संसार में कुछ भी पाना अवशेष नहीं रह जाता। वह इस ब्रह्माण्ड की सर्वोत्कृष्ट वस्तु, स्थिति ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुका होता है। इस कारण त्रिगुणातीत मनुष्य चेष्टारहित हो जाता है।

(ग) स्वस्थ स्थिति–

स्वस्थता दो प्रकार की होती है। एक संसारिक स्वस्थता और दूसरी आध्यात्मिक स्वस्थता। जब हम सभी में वात, पित्त, कफ दोष अपनी साम्यावस्था में रहते हैं तो हम सभी स्वस्थ रहते हैं अर्थात् निरोगता का आभास करते हैं। इसी को संसारिक स्वस्थता कहा जाता है। हम सभी ने अपने वास्तविक स्वरूप के बोध को विस्मृत कर दिया है इसलिए संसारिक स्थिति का बोध हमें रहता है। यह मिथ्याबोध अथवा मिथ्याभास अहंकार का कार्यरूप माना जाता है, परंतु जब साधक अपने वास्तविक स्वरूप का बोध कर लेता है अर्थात् अहंकार से पूरी तरह निवृत हो चुका होता है। तब इस प्रकार स्वस्वरूप में स्थित व्यक्ति को आध्यात्मिक स्वस्थता प्राप्त हो जाती है। त्रिगुणातीत मनुष्य की स्वस्थ स्थिति का अवलोकन कीजिए–

(एक) गुणों से विचलित नहीं होता– हम सभी सामान्य मनुष्य त्रिगुणों के प्रभाव से विचलित रहते हैं। जैसे तमोगुण मनुष्य से हिंसादि कर्म करवाता है। रजोगुण मनुष्य से संसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के कर्म करवाता है तथा सत्त्वगुण मनुष्य से पूजा–उपासना करने को बाध्य करता है परंतु त्रिगुणातीत मनुष्य पर गुणों का कोई प्रभाव नहीं रहता है। त्रिगुणातीत स्थिति गुणों के प्रभाव से मुक्त रखने का कवच है। इसलिए गुण त्रिगुणातीत मनुष्य को विचलित नहीं कर सकते। त्रिगुण सामान्य मनुष्य को विचलित करते हैं और हम सभी त्रिगुणों के प्रभाव से विचलित होकर के ही नाना प्रकार के कर्मों का संपादन संसार में करते रहते हैं, परंतु त्रिगुणातीत मनुष्य बिना त्रिगुणों के प्रभाव से विचलित होकर सामान्य भाव से रहता है।

(दो) गुणों की क्रियाविधि को जानता है– त्रिगुणातीत मनुष्य सत्त्व, रज, तम त्रिगुणों के प्रभाव को, उनके कार्य को और उनकी क्रियाविधि को भली प्रकार जानता है तथा ये जान लेत है कि त्रिगुण मनुष्य को किस प्रकार प्रभावित करते हैं? सामान्य मनुष्य त्रिगुणों के

प्रभाव से अपने को मुक्त नहीं कर पाता है। जैसे किसी रोग के प्रभाव को जान लेने पर ही यदि उसका उपचार ठीक प्रकार से न किया जाऐ तो मनुष्य उस रोग से अपने को मुक्त नहीं कर सकता है। इसी प्रकार त्रिगुणों के प्रभाव को जानकर उससे निवृत होने के लिए साधक को साधना करनी पड़ती है। त्रिगुणों के प्रभाव को त्रिगुणातीत पुरुष सम्यक्रूपेण जानता है और तपश्चर्या से उनसे मुक्त हो जाता है।

(तीन) स्वरूप में स्थिति– त्रिगुणों से अतीत मनुष्य की अपने स्वरूप में स्थिति रहती है, जबकि सामान्य मनुष्य प्रकृति के अधीन रहकर स्वस्वरूप के बोध से विमुख रहता है। इसलिए उसे प्रकृतिस्थ कहा जाता है और त्रिगुणातीत मनुष्य को स्वस्थ कहा जाता है। इस प्रकार सामान्य मनुष्य की स्थिति प्रकृति के अधीन रहती है और त्रिगुणातीत की स्थिति प्रकृति के परे रहती है।

इस प्रकार त्रिगुणातीत मनुष्य धैर्यपूर्वक रहता है और उपर्युक्त गुणों से युक्त रहता है। उपरोक्त लक्षणों को देखकर ही हम उसके त्रिगुणातीत स्थिति का आंकलन कर लेते हैं। त्रिगुणातीत मनुष्य वस्तुतः सिद्ध होता है और संसार से पृथक् हो जाता है। संसार में रहकर भी संसारिक चेष्टाओं में और उसके आकर्षण में नहीं फंसता है।

(23) त्रिगुणातीत को अमरता की अनुभूति–

त्रिगुणातीत मनुष्य को जगत से कुछ प्राप्त करना अवशेष नहीं रह जाता। उसके लिए संसार की सभी वस्तुऐं तुच्छ हो जाती हैं। जिस प्रकार मनुष्य को यदि बहुत सा धन प्राप्त हो जाऐ तो उसके लिए कुछ रुपए तुच्छ प्रतीत होते हैं। इस प्रकार त्रिगुणातीत मनुष्य को आत्यंतिक सुख की अनुभूति होती है। वह तत्त्व प्राप्त हो जाता है जिससे बढ़कर कोई आनंद नहीं है। इसीलिए इस आनंद को परमानंद कहा जाता है। परमानंद की अनुभूति से मनुष्य अपने विनाशी शरीर की स्थितियों को जान जाता है तथा मृत्यु के पश्चात पुनर्जन्म न होने वाली अमरता का आभास कर लेता है। कोई मनुष्य इस शरीर से अमर नहीं हो सकता। यह मानव देह का सदैव बना रहना संभव नहीं है। इस कारण अमर होने का अभिप्राय है, इस जगत में जन्म–मृत्यु के चक्र से विमुक्त हो जाना। त्रिगुणातीत मनुष्य इस जगत में रहकर अपनी स्थिति का आभास कर लेता है और स्वस्वरूप में स्थित हो जाता है तथा त्रिगुणों के प्रभाव से मुक्त होकर अमर हो जाता है।

(24) कल्याण का आकांक्षी त्रिगुणों को जाने :–

समस्त मनुष्य त्रिगुणों से प्रभावित रहकर अनेक प्रकार के सांसारिक कर्म करते रहते हैं। कोई भी मनुष्य त्रिगुणों से मुक्त नहीं है। जीवन मरण का चक्र कीट, पशु, पक्षी आदि

नारकीय योनियों में घूमना इन्हीं त्रिगुणों के प्रभाव से मोहित रहकर होता है। अपने कल्याण के आकाक्षी मनुष्य को सत्त्व, रज, तम, के स्वरूप, कार्यरूप और प्रभाव को जानना चाहिए रज तथा तम का परित्याग कर देना चाहिए। सांसारिक कामनाओं का पूर्णतः से त्याग तथा उनकी प्राप्ति का हेतु प्रयत्न का त्याग करें। हिंसा आदि दुष्कर्म से अपने को सर्वथा विमुख रखे तथा सत्त्वादि गुण के अधीन रहकर शुभ कर्मो का आचरण करें और विशेषकर भगवान की पूजा उपासना करे। त्रिगुणों के कार्य तथा उसके प्रभाव को समझे। त्रिगुणों के प्रभाव से अपने को श्रीभगवान की शरण में जाकर मुक्त करने का प्रयास करे। भगवान की शरणा गति से त्रिगुणों के प्रभाव, कार्य और स्वरूप को जानने में विशेष सहायता प्राप्त होती है। अपने कल्याण के आकांक्षी पुरूष को भगवान की शरण ग्रहण करनी चाहिऐ तथा उनके प्रभाव से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए त्रिगुणों का बहुत प्रभाव है। उनमें अपार शक्ति है, जिसके कारण संत महापुरूष भी त्रिगुणों के प्रभाव से मोहित रहते हैं। त्रिगुणों का विस्तार सम्पूर्ण त्रिलोक में है। देवगण, दैत्य, असुर, राक्षस आदि सभी लोग इसके प्रभाव से प्रभावित हैं। इस कारण इसके प्रभाव शक्ति, विस्तार को देखते हुए जो कुछ भी त्रिगुणों के बारे में कहा जा सका है वह श्री भगवान की साक्षात् कृपा है। त्रिगुणों के विस्तार को देखते हुए यह प्रकृति अत्यंत सूक्ष्म है। इस पुस्तक के लेखन में भी त्रिगुणों का पूर्ण प्रभाव रहा है। सभी कल्याण के आकांक्षी मनुष्यों को इस सूक्ष्म कृति का अध्ययन करना चाहिए, ऐसी विशिष्ट प्रार्थना है।

(25) सत्त्वगुण के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले विशिष्ट गुण तथा रज और तम के प्रभाव से विशिष्ट गुणों का निषेध :–

सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्य में कुछ विशिष्ट गुणों का उद्भव हो जाता है और वे गुण मनुष्य में प्रतीत होते हैं। परन्तु रज और तम गुणों के प्रभाव से यह विशिष्ट गुण दबे रहते है अथवा प्रतिकूलता को प्राप्त करते है। इन विशिष्टगुणों का विवरण निम्न प्रकार है।

(एक) सत्य : जैसा आभास किया गया और जैसा सुना गया वैसा वैसा ठीक आचरण करना सत्य कहलाता है। यद्यपि सत्य शब्द को सम्यक्रूपेण परिभाषित नहीं किया जा सकता परन्तु हम जैसा अनुभव करें वैसा वाणी से प्रकट करें, इसी को सत्य का स्वरूप सामान्य रूप से मानना चाहिए। रज और तमगुण के प्रभाव से हम जैसा आभास करते हैं वैसा प्रकट नहीं करते। इसी को असत्य का रूप जानना चाहिए।

(दो) पवित्रता : बाहर और अन्दर की शुद्धि को पवित्रता कहा जाता है। विशेषकर आन्तरिक शुद्धि का इसमें विशिष्ट महत्व है। किसी भी मनुष्य के प्रति हमारे अंतःकरण में अहित के

विचार न प्रकट हो तो इसको पवित्रता का रूप मानना चाहिए। रज और तम के प्रभाव से मनुष्य के अंतःकरण में अन्य मनुष्यों के प्रति कुविचार अवश्य उत्पन्न हो जाते हैं। यह अपवित्रता का स्वरूप है।

(तीन) दया : सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्य में सभी प्राणियों के प्रति एक करूणा का भाव आ जाता है, जिसके अधीन वह प्राणीमात्र की सेवा और सहायता करना चाहता है तथा किसी को दुखी देखकर उसके मन में अनायास ही उसके प्रति सहायता के भाव की उत्पत्ति होती है। जब किसी असहाय प्राणी को देखकर हमारे मन में कोई करूणा का भाव उसके प्रति उत्पन्न न हो तो इसको रज और तम गुण का प्रभाव मानना चाहिए इसी को कठोरता समझना चाहिए।

(चार) क्षमा : अपना हित करने वालों को भी अभयदान देना तथा उनके प्रति अहित का विचार न करना ही क्षमारूपी गुण कहा जाता है। यह गुण सत्त्वगुण की प्रधानता में स्वतः ही प्रकट हो जाता है। जब मनुष्य रज और तमगुण के प्रभाव में रहता है तो उसके अंतःकरण में अपना अहित करने वालों के प्रति द्वेष की भावना रहती है और इस द्वेष की भावना को वे क्रियान्वित करने का भी प्रयास करते हैं। इसी को अक्षमा कहा जाता है।

(पांच) संतोष : परमात्मा की व्यवस्था के अधीन हमको जो भी वस्तु, स्थिति और स्वजन प्राप्त हैं उनमें प्रसन्न रहना ही संतोषरूपी गुण है। यह गुण भी भी मनुष्य में सत्त्वगुण के प्रबल होने पर स्वतः ही उत्पन्न हो जाता है। जब तक मनुष्य में रज और तम गुण रहते हैं तब तक उसे अपनी स्थिति में संतोष नहीं रहता और वह अपनी स्थिति को परिवर्तित करने के लिए ही नानाप्रकार की सांसारिक चेष्टाऐं करता रहता है। यह सांसारिक चेष्टाऐं असंतोष के कारण ही होती हैं।

(छः) सरलता : वाणी से मृदुभाषिता और अंतःकरण में किसी के अहित की भावना का पूरी तरह विनाश हो जाने पर यह सरलतारूपी गुण स्वतः ही प्रकट हो जाता है। एक सरल व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से सामान्यरूप से व्यवहार करता है क्योंकि उसमें स्वार्थपरता का अभाव होता है। रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य अन्य व्यक्तियों के प्रति असामान्य व्यवहार करता है अपने स्वार्थी भावना के वशीभूत होकर दूसरों के अधिकारों को छीनने के लिए प्रयत्नशील होता है।

(सात) शम : मन का संयमन किया जाना ही शम कहा जाता है। मन अधिकांश सांसारिक विषयों में भ्रमण करता है तथा वह परमात्मा की ओर उन्मुख नहीं होता। उसे सांसारिक विषयों से हटाकर परमात्मा की ओर उन्मुख करने की क्रिया शम कहलाती है। सत्त्वगुण के

प्रभाव से यह शमरूपी क्रिया प्रबल होने लगती है। जब तक मनुष्य रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव में रहता है तब तक वह अशान्त रहता है और उसका मन चंचल और प्रमथनशील होता है इसी को अशम कहते हैं।

(आठ) दम : इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाना दम कहलाता है। इसे दमन भी समझना चाहिए। संसार में अनेक आकर्षक वस्तुऐं हैं जिनको देखकर हमारी इन्द्रियां उसको ग्रहण करने के लिए उत्सुक होती हैं और यह उत्सुकता ही तत्परता में परिवर्तित हो जाती है। जब मनुष्य में सत्त्वगुण का प्रभाव पड़ता है तो उसमें इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाने की इच्छा बलवती हो जाती है। रज और तमगुण के प्रभाव से मनुष्य अपनी इन्द्रियों को संयमित नहीं कर पाता और नानाप्रकार के सांसारिक रोगों में आकृष्ट रहता है। यह दम के प्रतिकूल स्थिति है।

(नौ) तप : तप में तीन प्रकार के तपों का उल्लेख किया जाता है जिन्हें शारीरिक, वाचिक और मानसिक तक कहते हैं। किसी भी प्राणी को अपने शरीर से किसी प्रकार का कष्ट न देना तो सामान्य रूप से शारीरिक तप है। किसी भी मनुष्य को कुछ ऐसा न कहना जिससे उसे दुख का आभास हो। यह वाचिक तप है और किसी भी मनुष्य के प्रति मन में कुविचार न रखना तथा प्रसन्नतापूर्वक रहना, यह मानसिक तप है। इस प्रकार का तप सामान्य रूप से तभी प्रकट होता है जब मनुष्य में सत्त्वगुण की प्रबलता हो जाती है। रज और तमगुण के प्रभाव से मनुष्य में ऐसे भाव प्रकट होते हैं, जिससे वह वचन और शरीर से दूसरों को उद्विग्न करता है। यह तप के प्रतिकूल स्थिति है।

(दस) समता : इस संसार में आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक आदि स्थितियां पृथक्–पृथक् हैं जो मनुष्य को अपने कर्मो के अनुसार प्राप्त हो जाती है। हम सभी सामान्य लोग आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक रूप से समृद्ध मनुष्यों का सम्मान करते हैं और उन्हें समाज का विशिष्ट व्यक्ति समझते हैं तथा जो सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक रूप से विपन्न हैं उन्हें निकृष्ट माना जाता है। यह भावना रज और तमगुण का कार्यरूप है अर्थात् रज और तम गुण के प्रभाव से मनुष्य में इस प्रकार की विषमता की भावना रहती है और जब मनुष्य में सत्त्वगुण का प्रभाव और प्रकटीकरण हो जाता है तब वह सभी मनुष्यों को एकसमान दृष्टि से देखता है। इसी को समतारूपी गुण कहा जाता है।

(ग्यारह) तितिक्षा : मनुष्य सदैव प्रसन्न नहीं रहता है। वह परिस्थितियों के अनुसार कभी–कभी अनेक कारणों से दुःखी भी हो जाता है। प्रतिकूलताऐं आने पर मनुष्य का उद्विग्न हो जाना एक सामान्य बात है और प्रतिकूलताओं में हम सामान्य रूप से दुःखी रहते हैं। सत्त्वगुण के प्रकट हो जाने पर, किसी भी प्रकार की प्रतिकूलता के आने पर, हम उसे

सामान्य रूप से सहन करते हैं और दुःख का प्रकटीकरण नहीं करते हैं तथा उसी प्रकार सुख का आभास करते हैं जैसा अनुकूलताओं में करते हैं। यह मनुष्य का विशिष्ट गुण होता है, जो सत्त्वगुण के प्रभाव से प्रकट हो जाता है। रज और तमगुण के प्रभाव से मनुष्य प्रतिकूलताओं में उद्विग्न होकर दुःख और शोक का प्रकटीकरण करता है।

(बारह) शास्त्र विचार : रज और तमगुण के प्रभाव से मनुष्य सांसारिक ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करता है। सांसारिक ज्ञान वह ज्ञान है जिसके माध्यम से संसार में आकर्षक वस्तुओं और स्थितियों को प्राप्त करने का उद्देश्य रखकर कार्य किया जाता है। रज और तमगुण के प्रभाव से मनुष्य संसार के विषय को जानना चाहता है। जब मनुष्य में सत्त्वगुण का प्रभाव बढ़ता है तब वह सांसारिक ज्ञान को जानने की प्रक्रिया को रोक कर आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करता है। यह प्रयास शास्त्रों के अध्ययन और उस पर मनन करने से सफल होता है। इस प्रकार शास्त्रों पर विचार करने की भावना सत्त्वगुण के प्रबल होने के उपरान्त ही मनुष्य में आती है। वैसे नहीं आती है।

(तेरह) ज्ञान : सामान्य मनुष्य रज और तमगुण के प्रभाव से प्रभावित रहता है तथा वह ज्ञान के संदर्भ में या तो भ्रमित रहता है अथवा अज्ञान को ही ज्ञान मान लेता है। धर्म क्या है? अधर्म क्या है? नीति क्या है? अनीति क्या है? कर्तव्य क्या है? अकर्तव्य क्या है ? किस कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए? किस कार्य से निवृत्त होना चाहिए? आदि आदि विषयों का जानना ही सामान्य रूप से ज्ञान की परिभाषा में आता है परन्तु यदि परमात्मा के साक्षात्कार का हमें सैद्धान्तिक ज्ञान हो जाए तो यह विशिष्ट ज्ञान की श्रेणी में आ जाता है। सत्त्वगुण के उत्पन्न होने पर मनुष्य में इस प्रकार के ज्ञान का प्रकटीकरण होता है। जब तक रजोगुण रहता है तब तक इस प्रकार के ज्ञान का प्रकटीकरण कदापि नहीं हो सकता।

(चौदह) वैराग्य : सामान्य रूप से हम सभी सांसारिक विषय भोगों में लिप्त रहते हैं और उनमें सुख का आभास करते हैं। यह स्थिति रज और तमगुण के कारण मनुष्य में प्रकट रहती है। जब मनुष्य में सत्त्वगुण का उद्भव हो जाता है तब उसमें संसार के विषय भोगों के प्रति एक घृणा का भाव उत्पन्न होता है, क्योंकि संसार के विषयभोग ही मनुष्य के पतन के प्रमुख कारण हैं और यही उसे नानाप्रकार की नारकीय योनियों में भी घुमाते हैं तथा पुनः जन्म ओर पुनः मृत्यु का मूलभूत कारण हैं। सत्त्वगुण के प्रकट होने पर मनुष्य में सांसारिक भोगों के प्रति घृणा का भाव प्रबल हो जाता है। इसी को सामान्य रूप से वैराग्य कहा जाता है।

(पंद्रह) ऐश्वर्य : शुभ कर्मो के सम्पादन के उपरान्त मनुष्य के शुभकर्मो के फल का लाभ उसे ऐश्वर्य के रूप में प्राप्त होता है। समाज में उसे प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है और लोग उसका सम्मान करते हैं। संसार की दुर्लभ वस्तुऐं और स्थितियां स्वतः ही उपलब्ध होती हैं। सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्य शुभकर्म करता है और उसे शुभकर्मो के फल से प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त होता है जो ऐश्वर्य के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य जो भी क्रियाऐं करता है उसमें वैसा ऐश्वर्य प्राप्त नहीं होता है।

इसके अतिरिक्त सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्य में अन्य प्रकार के भी गुण प्रकट हो जाते हैं वीरता, तेज, बल, स्मृति, धैर्य, कोमलता, निर्भीकता, विनयशीलता, साहस, सौभाग्य, गंभीरता, आस्तिकता, कीर्ति, निरंहकारिता कहते हैं। हम सभी को इस कारण सत्त्वगुण के विकास हेतु प्रयास करना चाहिए।

लेखन आरम्भ 28 जून 2012 से लेखन समाप्त 16 जुलाई 2012